अध्याय ५

ध्वनि-विचार

(क) स्वनिम-विज्ञान, ध्वनिग्राम-विज्ञान (Phonemics)

५.१. स्वनिम–विज्ञान और स्वनिम (Phoneme)

स्वनिमाख्यं तु विज्ञानं, मूल-ध्वनि-विबोध-कृत् ।
ध्वनि-विश्लेष-विवृत्या, लिप्यंकनमिहोद्यते ॥ १ ॥
भाषाविशेष-संबद्धं साम्य-विवृतिमूलकम् ।
ध्वनेः साम्यं च वैषम्यं विवृतिश्चेह वर्ण्यते ॥ २ ॥ (कपिलस्य)

(स्वनिम-विज्ञान में मूल ध्वनियों का बोध कराया जाता है। इसमें ध्वनियों के विश्लेषण और विवरण के साथ ही उनके लिपिरूप में अंकन का वर्णन होता है। यह किसी विशेष भाषा से सम्बद्ध होता है। इसमें समान ध्वनियों को एक वर्ग में रखा जाता है। ध्वनियों की समानता, विषमता और विवरण के द्वारा उनको छाँटा जाता है।)

भाषाविशेष-संबद्धो लघिष्ठः सार्थको ध्वनिः ।
समध्वनेः प्रतिनिधिः, भेदकृत् स्वनिमो मतः ॥ ३ ॥ (कपिलस्य)

(स्वनिम किसी भाषा-विशेष से सम्बद्ध लघुतम सार्थक ध्वनि है। यह समान ध्वनियों की प्रतिनिधि होती है। अन्य ध्वनियों से किसी रूप में भिन्न होने के कारण इसको भेदक ध्वनि माना जाता है।)

५.१. (क) स्वनिम–विज्ञान के विभिन्न नाम

फोनीमिक्स (Phonemics) के लिए हिन्दी में अनेक शब्द प्रचलित हैं— ध्वनिग्राम-विज्ञान, स्वनिमी, स्वानिमी, स्वनिम-विज्ञान, स्वनग्रामिकी, ध्वनिग्रामिकी, ध्वनितत्त्व-विज्ञान, ध्वनिमात्राविज्ञान, वर्ण-विज्ञान आदि। इनमें से स्वनिम-विज्ञान और ध्वनिग्राम-विज्ञान नाम अधिक प्रचलित हैं। फोन (Phone) के लिए 'स्वन' शब्द है। अतः फोनीम को 'स्वनिम' और फोनीमिक्स को 'स्वनिम-विज्ञान' कहना अधिक उपयुक्त है। फोन का अनुवाद 'ध्वनि' करने पर फोनीम के लिए 'ध्वनिग्राम' और फोनीमिक्स के लिए 'ध्वनिग्राम-विज्ञान' शब्द होंगे।

५.१. (ख) स्वनिम–विज्ञान क्या है?

स्वनिम-विज्ञान (फोनीमिक्स) भाषाशास्त्र का एक प्रमुख अंग है। इसमें प्रत्येक

Scanned with CamScanner

भाषा के स्वनिमों (फोनीम) का वैज्ञानिक विश्लेषण-विवेचन-पद्धति के द्वारा संकलन किया जाता है और उनके आधार पर प्रत्येक भाषा के लिए सुव्यवस्थित वैज्ञानिक लिपि तैयार की जाती है। यह विज्ञान अनेक दृष्टि से भाषाशास्त्र के लिए अत्युपयोगी सिद्ध हुआ है।

५.१. (ग) स्वनिम का स्वरूप

स्वनिम (फोनीम) के स्वरूप के विषय में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है। ब्लूमफील्ड (Leonard Bloomfield) और डेनियल जोन्स (Daniel Jones) आदि इसे भौतिक (Physical) इकाई मानते हैं। एडवर्ड सपीर (Edward Sapir), कुर्तिन तथा प्राग स्कूल के कुछ भाषाशास्त्री स्वनिम को मनोवैज्ञानिक (Psychological) इकाई मानते हैं। प्रो० ट्वाडेल (W.F. Twaddell) इसको अमूर्त काल्पनिक इकाई (Abstractional Fictitious Unit) मानते हैं। कुछ विद्वान् इसको बीजगणितीय (Algebraical) इकाई सिद्ध करते हैं। विचार करने से ज्ञात होता है कि स्वनिम (फोनीम) को अमूर्त काल्पनिक इकाई मानना अधिक उचित है। स्वनिम ध्वनि-समूह का द्योतक है, अत: यह जाति है। जिस प्रकार जाति और व्यक्ति में जाति अमूर्त है और व्यक्ति मूर्त, उसी प्रकार स्वनिम जाति होने के कारण अमूर्त है और संस्वन या संध्वनि (Allophone) मूर्त हैं। जिस प्रकार लोक-व्यवहार में जाति के स्थान पर व्यक्ति का व्यवहार होता है, उसी प्रकार भाषा में संस्वन का ही व्यवहार होता है, स्वनिम का नहीं। प्रयोग की दृष्टि से संस्वन का ही अस्तित्व है, स्वनिम इसके मूल स्वरूप को द्योतित करता है।

५.२. स्वनिम (फोनीम) का संक्षिप्त इतिहास

फोनीम (स्वनिम) वर्णमाला को द्योतित करता है। इसका इतिहास प्राय: उतना ही पुराना है, जितना वर्णमाला का। भाषा-ध्वनि या वर्णमाला के अर्थ में फोनीम शब्द का प्रयोग अर्वाचीन है। फोनीम (Phoneme) शब्द के जन्मदाता प्रो० हैवेट हैं। इन्होंने १८७६ ई० के लगभग इस शब्द का प्रयोग भाषा-ध्वनि के अर्थ में किया था। प्रो० ब्लूमफील्ड (L. Bloomfield), एडवर्ड सपीर (Edward Sapir), और द सोस्यूर (De Saussure) ने प्रारम्भ में स्वनिम-विज्ञान को आगे बढ़ाने में विशेष उल्लेखनीय कार्य किया। बाद में नये उत्साही भाषाशास्त्री पाइक (K.L. Pike), बर्नार्ड ब्लाख (Bernard Bloch), ट्रैगर (G.L. Trager), ग्लीसन (H.A. Gleason) ने इस कार्य में विशेष प्रगति की। इस क्षेत्र में इनके अतिरिक्त फिशर (F. Fischer), ट्रुबेत्सकाय (N.S. Trubetzkoy), ट्वाडेल (W.F. Twaddell), हाकेट (C.F. Hockett), याकोब्सन (R. Jakobson) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

५.३. स्वनिम की परिभाषा

स्वनिम (फोनीम) भाषा की वह लघुतम इकाई है, जो समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करती है। यह अन्य ध्वनियों से भिन्न होती है। इसका सम्बन्ध किसी भाष-

विशेष से होता है।[1] जिन परिस्थितियों में एक स्वनिम आता है, ठीक उन्हीं परिस्थितियों में दूसरा स्वनिम नहीं आता। प्रत्येक स्वनिम स्वतंत्र एक ही संकेत से संकेतित किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक सार्थक ध्वनि के लिए स्वतंत्र संकेत होते हैं। उच्चारणस्थान और प्रयत्न की समानता के आधार पर स्वनिमों का निर्धारण किया जाता है। स्वनिम की संघटक ध्वनियों को संस्वन, एलोफोन (Allophone) या संध्वनि कहते हैं।[2]

५.४. स्वनिम की विशेषताएँ

स्वनिम की प्रवृत्ति के विवेचन से निम्नलिखित तथ्य ज्ञात होते हैं—

१. स्वनिमों या फोनीम किसी भाषा की लघुतम अखण्ड्य इकाई होता है। जैसे; अ, इ, क्, च्, ट्, त्, प् आदि। यह एक जाति या श्रेणी है।

२. स्वनिम समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है। एक ही ध्वनि यदि अनेक प्रकार से उच्चरित होती है तो स्वनिम एक ही होगा। उसके संस्वन या संध्वनि (एलोफोन) अनेक हो सकते हैं।

३. स्वनिम में अर्थ-परिवर्तन की शक्ति होती है। जैसे; काल, गाल, लाल में क्, ग्, ल् स्वतंत्र स्वनिम हैं। अतः इनके भेद से अर्थों में अन्तर हो जाता है। संस्वन या संध्वनि में अर्थ-परिवर्तन करने की शक्ति नहीं होती।

४. स्वनिम समीपवर्ती ध्वनियों से प्रभावित होते हैं। जैसे; लाल, लूट, उल्टा में ल् ध्वनि। लाल में ल् आ के कारण कण्ठस्थान से प्रभावित है। लू में ऊ के कारण जीभ कुछ

---

1. (क) 'A phoneme is a class of phonetically similar sounds, contrasting and mutually exclusive with all similar classes in the language.'—B. Bloch and G.L. Trager : *Outlines of Linguistic Analysis*, 1972, p. 40.
(ख) 'A phoneme is a family sounds in a given language which are related in character and are used in such a way that no one member ever occurs in a word in the same phonetic context as any other member.'—D. Jones : *The Phoneme*, 1950, p. 10.
(ग) 'A phoneme is a class of sounds which (1) are phonetically similar and (2) show certain characteristic patterns of distribution in the language or dialect under consideration.'—H.A. Gleason : *An Introduction to Descriptive Linguistics*, p. 261.
(घ) 'We can define a phoneme as a unit, a bundle of sound features, or a point of contrast.'—Robert Hall : *Introductory Linguistics*, p. 79.

2. ...which compose a phoneme are its

Scanned with CamScanner

स्वनिम में भेद नहीं होता है। परवर्ती ध्वनि के आधार पर क् के उच्चारण में भेद हो सकता है, जैसे—काल, कुल, क्रम, क्लान्त, क्षय आदि। ऐसे संस्वनों को क्^{1}, क्^{2}, क्^{3} आदि लिखकर अन्तर दिखाया जाता है।

३. संस्वन में अर्थभेदता नहीं होती है। क् को किसी भी स्थान से उच्चारण करें, कण्ठ से या उसके आगे-पीछे स्थान से, उससे अर्थ में अन्तर नहीं होगा।

४. संस्वन इकाई है, स्वनिम जाति या वंश।

५.६. स्वनिम-विज्ञान की उपयोगिता

१. स्वनिम-विज्ञान भाषा-शिक्षण की सरलतम वैज्ञानिक पद्धति है। इसमें प्रत्येक भाषा की प्रचलित वर्णमाला पर ध्यान न देकर केवल मूल ध्वनियों को नोट किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक भाषा में मूल ध्वनियों की संख्या सीमित रह जाती है और उन पर सरलता से अधिकार करके नवीन भाषा को सरलतम ढंग से सीखा जा सकता है।

२. स्वनिम-विज्ञान के विश्लेषणों से सिद्ध हुआ है कि विश्व की भाषाओं में कम से कम १५ से लेकर अधिक से अधिक ६० स्वनिम विभिन्न भाषाओं में पाए जाते हैं। सामान्य रूप से ३० स्वनिमों का औसत है। इनके शुद्ध ज्ञान से संबद्ध भाषा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

३. ध्वनिविज्ञान (फोनेटिक्स) के द्वारा संगृहीत सामग्री का स्वनिमविज्ञान में व्यावहारिक उपयोग होता है। संगृहीत ध्वनियों में से स्वनिमों का संकलन किया जाता है। फोनेटिक्स समुद्र है तो फोनीमिक्स उसमें से निकाले गये रत्न हैं। इन रत्नों की माला (स्वनिम-माला) ही प्रत्येक भाषा का सर्वस्व है।

४. स्वनिमविज्ञान भाषाशास्त्र को एक नवीन व्यावहारिक दृष्टिकोण देता है। यह भाषा के असार अंश को छोड़कर सार-भाग ग्रहण करने की शिक्षा देता है और अनावश्यक विस्तार के स्थान पर सूत्र-रूप से कार्य-निर्वाह की विधि बताता है।

५. स्वनिमविज्ञान भाषाशास्त्र की नींव है। भाषाशास्त्र के सभी अंग, पद-विज्ञान, वाक्य-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान आदि स्वनिम के ज्ञान पर ही निर्भर हैं। स्वनिम-समूह ही पद बनता है और पद-समूह वाक्य। इस प्रकार स्वनिमविज्ञान पद, वाक्य और अर्थ का बोध कराने के कारण भाषाशास्त्र की आधारशिला है।

६. स्वनिमविज्ञान ही आदर्श वर्णमाला या लिपि के निर्माण में समर्थ है। विश्व की सभी भाषाओं के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय लिपि स्वनिम-विज्ञान के आधार पर ही संभव है। जिसमें एक ध्वनि के लिए एक ही संकेत हो तथा एक लिपि-संकेत से एक ही ध्वनि या स्वनिम का बोध हो।

स्वनिमविज्ञान के प्रवर्तक के रूप में महर्षि पाणिनि का नाम सादर लिया जा सकता है। इन्होंने माहेश्वर सूत्रों के रूप में संस्कृत के स्वनिमों (फोनीम) का सर्वांगीण संग्रह किया है। महर्षि पाणिनि की पद्धति आज भी विश्व के भाषाशास्त्रियों के लिए आदर्श एवं ग्राह्य है।

५.७. ध्वनि (Sound) और स्वनिम (ध्वनिग्राम) (Phoneme) में अन्तर

१. ध्वनि एक भौतिक घटना-मात्र है। यह भाषा-निरपेक्ष है। स्वनिम (ध्वनिग्राम)

Scanned with CamScanner

अ को निषेधार्थक समझकर कुछ लोग 'धिज्ञ' प्रयोग करते हैं। शुद्ध 'स्रष्टा' के स्थान पर 'सृष्टा', शुद्ध 'अनुगृहीत' के स्थान पर अनुग्रह के सादृश्य पर 'अनुग्रहीत' अशुद्ध प्रयोग अज्ञता के कारण हैं।

५. **बल** (Stress, Emphasis)—किसी शब्द पर बल देने के लिए भी भाषा में रूप-परिवर्तन किया जाता है। 'श्रेष्ठ' शब्द 'तम' अर्थ वाला (Superlative) है, परन्तु श्रेष्ठ से लोग सन्तुष्ट न रहकर बल देने के लिए 'सर्वश्रेष्ठ' और 'श्रेष्ठतम' का भी प्रयोग करते हैं। यह 'डबल सुपरलेटिव' हो गया, जो कि निषिद्ध है। इसी प्रकार स्वादु से स्वादिष्ट (स्वादुतम, अत्यधिक स्वाद वाला) शब्द बना है, परन्तु 'अत्यन्त स्वादिष्ट' शब्द बल देने के लिए प्रयुक्त होने लगा।

बल देने के लिए कुछ अशुद्ध प्रयोग भी चल पड़ते हैं। जैसे—अनेक (एक से अधिक) शब्द बहुवचन का बोधक है। इसका भी 'अनेकों' बहुवचनान्त प्रयोग (अनेकों विद्वानों ने, आदि) चल पड़ा है। भोजपुरी में 'फजूल' (व्यर्थ) के अर्थ में अशुद्ध शब्द 'बेफजूल' बेकार अर्थ में चलता है। यद्यपि बे (नहीं) + फजूल (व्यर्थ) का अर्थ होगा—सार्थक या जो व्यर्थ नहीं है।

६.१२. रूपिम–विज्ञान या रूपग्राम–विज्ञान (Morphemics)

जिस प्रकार स्वन (Sound) के आधार पर स्वनिम-विज्ञान नाम पड़ा है, उसी प्रकार रूप या पद (morph, मार्फ) के आधार पर रूपिम-विज्ञान (मार्फीमिक्स) नाम पड़ा है। इसको रूपग्राम-विज्ञान, मार्फिमी, पदिम-विज्ञान आदि नाम भी दिए गए हैं।

पाश्चात्त्य भाषाशास्त्रियों को यह विज्ञान भारतीय भाषाशास्त्रियों, मुख्यतः पाणिनि, की देन है। पाश्चात्त्य भाषाशास्त्री इस ऋण को स्वीकार करते हैं। प्रो० आर० एच० रोबिन्स (R.H. Robins) ने लिखा है कि भाषाशास्त्र में रूपिम (morpheme, मार्फीम) के अध्ययन का महत्त्व भारतीय वैयाकरणों की देन है।[1]

पाणिनि ने जिस प्रकार संस्कृत भाषा के पद-विज्ञान का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन अष्टाध्यायी में उपस्थित किया है, वह विश्व के भाषाशास्त्रियों के लिए आदर्श है। ऐसा सर्वांगीण अध्ययन आजतक किसी भाषा का प्रस्तुत नहीं किया गया है।

रूपिम-विज्ञान (रूपग्राम-विज्ञान) का आधार रूप या पद है। इसमें प्रत्येक भाषा में प्रयुक्त पदों (रूपों) के सार्थक अवयवों का विभाजन करके रूपिम (मार्फीम) और

---

1. Recognition of the status of the morphemes in linguistic analysis was one of the achievements of the ancient Indian linguists, of whom Panini is the most famous, and this is one of the debts Western linguistic scholarship owes to Indian work, which became known in Europe during the course of the nineteenth century.

—R.H. Robins : *General Linguistics*, p. 202.

Scanned with CamScanner

संरूप (Allomorph, एलोमार्फ) का निर्धारण किया जाता है। इसका आधार अर्थ और वितरण होता है। यह रूपिम (मार्फीम) सामान्यतया चार रूपों में प्राप्त होता है—(१) रूपिम (Free morpheme), (२) बद्ध रूपिम (Bound morpheme), (३) संयुक्त रूपिम (Complex morpheme), (४) मिश्रित या समस्त रूपिम (Compound morpheme)। एक ही रूपिम के समानार्थक विभिन्न रूपों को संरूप (Allomorph) कहते हैं। संरूपों में जो अधिक प्रचलित या प्रयुक्त होता है, उसे रूपिम (morpheme) माना जाता है, शेष को संरूप। संयुक्त और समस्त रूपिमों में पद-संघटना में कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी होते हैं, उनका अध्ययन संधि या रूपस्वनिम विज्ञान (morphophonemics, मार्फोफोनीमिक्स) के अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार रूपिम-विज्ञान के विषय हैं—

१. रूपिम या रूपग्राम (Morpheme)
२. संरूप (Allomorph)
३. संधि और रूपस्वनिमविज्ञान (Morphophonemics)

रूपिम (रूपग्राम, Morpheme)

रूपिम का लक्षण—भाषा या वाक्य की सार्थक लघुतम इकाई को रूपिम (रूपग्राम) कहते हैं।[1] रूपिम और स्वनिम में मुख्य अन्तर यह है कि—स्वनिम का सार्थक होना अनिवार्य नहीं है, रूपिम का सार्थक होना अनिवार्य है। 'राम' में र् आ म् अ = ४ स्वनिम हैं, ये चारों निरर्थक हैं। परन्तु 'राम'—रूपिम एक सार्थक इकाई है। यह एक रूपिम है, क्योंकि एक सार्थक शब्द है।

रूप या पद का विवेचन पहले किया जा चुका है। उसमें शब्द या धातु + प्रत्यय = रूप का उल्लेख हुआ है। प्रत्येक पद या रूप को दो दृष्टियों से देखा जाता है—(१) रचना, (२) अर्थ।

(१) अङ्ग-रूपिम—रचना की दृष्टि से रूप को बाँटने पर दो तत्त्व मिलते हैं—धातु या प्रातिपदिक + प्रत्यय। धातु और प्रातिपदिक को Root, Stem, Base कहते हैं। संस्कृत में इसे 'अंग' (आधार, मूलतत्त्व) कहते हैं।[2] इसमें ही सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित आदि प्रत्यय जुड़ते हैं। मूल धातु या प्रातिपदिक (अंग) को Root-morpheme (धातु-रूपिम या अंग-रूपिम) कहते हैं। इनमें लगने वाले प्रत्ययों को Affix-morpheme (प्रत्यय-रूपिम) कहते हैं। इस प्रकार रचना की दृष्टि से दो प्रकार के रूपिम हैं—

---

1. (A) Any form, whether free or bound, which can not be divided into smaller meaningful parts is a morpheme.—B. Bloch & G.L. Trager : *Outlines of Linguistic Analysis*, p. 54.
(B) These minimal grammatical units are called morphemes.—R.H. Robins : *General*

Scanned with CamScanner

१. अंग-रूपिम, २. प्रत्यय-रूपिम।

१. अंग-रूपिम—इनमें से **अंग-रूपिम** मुक्त (Free) और बद्ध (Bound) दोनों प्रकार के हो सकते हैं, जैसे—हिन्दी में—राम, कृष्ण, बालक; अंग्रेजी में—Cat, Rat, Man, ये मुक्त अंग-रूपिम (Free Root-morpheme) हैं। इनका स्वतन्त्र रूप में प्रयोग हो सकता है। बद्ध अंगरूपिम (Bound Root-morpheme) में क्रिया या संज्ञापदों में धातु आदि से पूर्व आने वाले उपसर्ग या निपात हैं, जैसे—प्र + हार, आ + हार, सम् + हार, तिरस् + कार, आविस् + भाव = आविर्भाव, दुस् + कृत्य = दुष्कृत्य, अनु + भू, आदि। अंग्रेजी में—Perceive, Conceive, manly आदि। इनमें प्र, आ, सम् आदि उपसर्ग; तिरस्, आविस् आदि निपात; Per, con, ly आदि बद्ध अंगरूपिम हैं। प्र आदि का अंग के रूप में स्वतन्त्र प्रयोग नहीं हो सकता है।

(२) प्रत्यय-रूपिम (Affix Morpheme)—प्रातिपदिक और धातु के अन्त में लगने वाले सुप् (सु औ जस्, : औ, अ: आदि) और तिङ् (तिप् तस् झि; ति त: अन्ति आदि) प्रत्यय-रूपिम हैं। इसी प्रत्यय कृत् (तृ, तवत्, ति, तव्य आदि) और तद्धित (अ, वत्, मत्, तर, तम, त्व, ता आदि) प्रत्यय भी प्रत्यय-रूपिम हैं। इनका स्वतन्त्र प्रयोग नहीं हो सकता है। ये अंग के साथ मिलकर प्रयुक्त होते हैं, जैसे—राम:, पचति, कृतम्, वासुदेव: आदि।

रचना की दृष्टि से अंग और प्रत्यय रूपिम के अतिरिक्त एक अन्य भेद मुक्त-बद्ध-रूपिम भी माना जाता है।

(१) मुक्त रूपिम (मुक्त रूपग्राम, Free Morpheme)—जो रूपिम (मार्फीम) स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त हो सकता है, उसे मुक्त रूपिम कहते हैं। जैसे—हिन्दी में—पुस्तक, गृह, बालिका, स्वावलम्बन आदि संज्ञा शब्द; पढ़, उठ, रो, हँस आदि क्रिया-शब्द; अंग्रेजी में—Boy, Cat, Play, Drive, Ride आदि, इनका स्वतन्त्र रूप में प्रयोग हो सकता है। रचना और प्रयोग की दृष्टि से ये एक अविभाज्य अंग हैं। ये सार्थक सूक्ष्मतम रूप हैं। इनमें प्रत्येक वर्ण का कोई अर्थ नहीं है।

(२) बद्ध रूपिम (बद्ध रूपग्राम, Bound Morpheme)—जो रूपिम (मार्फीम) स्वतन्त्र रूप में प्रयुक्त न होकर किसी अंग (धातु, प्रकृति, Stem) के साथ मिलकर ही प्रयुक्त होते हैं, इन्हें बद्ध रूपिम कहते हैं। जैसे ऊपर दिये गये उदाहरणों में धातु से पूर्व लगने वाले उपसर्ग और निपात आदि तथा अंग के बाद में लगने वाले सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित आदि प्रत्यय। शब्दों के बाद लगने वाले कारक चिह्न सुप् (: औ, अ: आदि), धातुओं के अन्त में लगने वाले तिङ् (ति, त: आदि), कृत् प्रत्यय (त, तवत्, ति, तृ आदि), तद्धित प्रत्यय (ता, तर, तम आदि), स्त्री-प्रत्यय (आ, ई आदि), ये धातु या शब्द के साथ मिलकर ही प्रयोग में आते हैं। जैसे—बालक:, पचति, कृतम्, वासुदेव:, मधुरता, रमा, सुपुत्री आदि। अंग्रेजी में Pre-fer, Re-fer, Con-fer, Man-ly, Play-s, Play-ed, Person-al आदि में जुड़ने वाले निपात (आदिसर्ग, Prefix) Pre, Re, Con-, आदि तथा अन्त में जुड़ने वाले प्रत्यय (अन्तसर्ग, Suffix) -s, -ed, -al आदि बद्ध-रूपिम हैं। इनका स्वतन्त्र प्रयोग नहीं हो सकता है।

Scanned with CamScanner

(३) मुक्त-बद्ध रूपिम (मुक्त-बद्ध-रूपग्राम, Free-bound Morpheme)—इन्हें अर्धमुक्त, अर्धबद्ध, बद्धमुक्त रूपिम या मर्षिम आदि नाम भी दिये गये हैं। जो रूपिम मुक्त और बद्ध दोनों रूपों में प्राप्त होता है, उसे मुक्त-बद्ध रूपिम कहा जाता है। जैसे—गृह-स्वामी, राज-पुरुषः, घनश्यामः आदि समस्त पद। समासयुक्त पदों में दो या अधिक अवयव होते हैं। समस्त पद में वे एकपद में बद्ध हैं, इसलिए वे बद्ध रूपिम हैं। राजपुरुषः में राजन् और पुरुष का अलग प्रयोग नहीं कर सकते हैं। राजपुरुषः समस्त पद 'राजकीय कर्मचारी' अर्थ बताता है। उपर्युक्त उदाहरणों में गृह, राजन्, धन, स्वामी, पुरुष आदि का स्वतन्त्र भी प्रयोग होता है, अतः ये शब्द मुक्त रूपिम भी हैं। अतः इन्हें मुक्त-बद्ध रूपिम कहा जाता है।

(४) मिश्र रूपिम (मिश्र रूपग्राम, Complex Morpheme)—मिश्र रूपिम उसे कहते हैं, जहाँ पर मुक्त + बद्ध रूपिम मिलकर प्रयुक्त हों। संस्कृत में प्रायः सभी सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त और तद्धित-प्रत्ययान्त पद मिश्र रूपिम होते हैं, क्योंकि इनमें अंग + प्रत्यय = पद होते हैं। बालकः (बालक + स्), पचति (पच् + अति), कृतम् (कृ + त + अम्), सुन्दरता (सुन्दर + ता) में प्रकृति और प्रत्यय मिलकर पद बने हैं। अतः मिश्र रूपिम हैं।

(५) संयुक्त रूपिम (संयुक्त रूपग्राम, Compound Morpheme)—इसको समस्त रूपिम भी कहते हैं। जहाँ पर दो या अधिक शब्द मिलकर एक समस्त (समासयुक्त) पद बन जाते हैं, वहाँ पर दो अंग-रूपिमों के मिलने से एक स्वतन्त्र शब्द बनता है, अतः वह संयुक्त रूपिम होता है। जैसे—राजन् + पुरुष = राजपुरुष (राजकीय कर्मचारी), दश + आनन = दशानन (रावण), नील + उत्पल = नीलोत्पल (नीलकमल), कृष्ण + सर्प = कृष्णसर्प (एक विशेष प्रकार का काला साँप)। इनमें एक से अधिक अंग-रूपिम हैं, अतः इन्हें संयुक्त रूपिम कहते हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी में Blackbird, Gentleman, Salesman, Playmate आदि समस्त पद हैं, अतः ये संयुक्त रूपिम हैं।

अर्थ और कार्य की दृष्टि से रूपग्रामों के दो भेद हैं—

(१) अर्थतत्त्व या अर्थदर्शी रूपिम (Stem Morpheme)—इसको अंग-रूपिम या धातु-रूपिम भी कहते हैं। संस्कृत व्याकरण के अनुसार ये अंग, प्रातिपदिक या धातु (Stem, Root) हैं। ये केवल अर्थ का बोध कराते हैं, इसके अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं करते हैं। ये मनुष्य के विचारों का साक्षात् प्रतिनिधित्व करते हैं। ये संज्ञा (मोहन, बालक, पुस्तक आदि), क्रिया (भू, गम्, पठ्, जा, हो, पढ़ आदि), विशेषण (सुन्दर, पटु, मृदु आदि), सर्वनाम (सर्व, उभ, सब, मैं, हम, तू आदि) आदि होते हैं। प्रत्येक भाषा में इनकी संख्या हजारों में है। अंग्रेजी में ये अधिकांश में मुक्त रूपिम (Free Morpheme) के रूप में प्राप्त होते हैं। जैसे—Boy, Man, Play आदि। लैटिन में अधिकांश अर्थदर्शी रूपिम बद्ध-रूपिम (Bound Morpheme) के रूप में मिलते हैं। जैसे—Vena (वेना-शिकार करना) + tor (कर्त्ता, संस्कृत तर्), Venator (वेनातोर-शिकारी)। संस्कृत और हिन्दी में दोनों प्रकार के अर्थदर्शी रूपिम मिलते हैं। मुक्त रूपिम हैं—मणि, बाल, बाला, भू,

Scanned with CamScanner

पढ़, जा, हो आदि। बद्ध रूपिम हैं—हन् + तृ = हन्ता (मारने वाला), पठ् + अक = पाठक (पढ़ने वाला), भुज् + अन = भोजन, युज् + अ = योग, भूत + इक = भौतिक आदि। अर्थ की दृष्टि से इनका विचार अर्थ विज्ञान में किया जाएगा। अर्थतत्त्व को अर्थिम (Semanteme सेमेन्टीम या Sememe सेमीम) कहते हैं।

(२) सम्बन्धतत्त्व या सम्बन्धदर्शी रूपिम (Functional Morpheme)—ये सम्बन्धदर्शी रूपग्राम या कार्यात्मक रूपग्राम भी कहे जाते हैं। ये अंग (Stem) के तुल्य मुख्य रूप से अर्थ के बोधक न होकर संज्ञा, क्रिया आदि में सम्बन्धों का बोध कराते हैं। ये हैं—सुप्, तिङ् आदि प्रत्यय, पूर्वसर्ग, मध्यसर्ग और अन्तसर्ग आदि प्रत्यय। ये कारक, वचन, लिंग, काल, पुरुष, वृत्ति (Mood) आदि का बोध कराते हैं। जैसे—रामः—एकवचन, पुंलिंग, कर्ता। पठति—वर्तमानकाल, प्रथम पुरुष, एकवचन। ये व्याकरणिक कार्य करते हैं, अतः इन्हें कार्यात्मक रूपिम (Functional Morpheme) कहा जाता है। ये बद्ध-रूपिम (Bound Morpheme) हैं।

संस्कृत में इनकी संख्या लगभग १०० है (२१ सुप् + ९ तिङ् परस्मै०, ९ तिङ् आत्मने०, २२ उपसर्ग, स्त्रीप्रत्यय, पूर्वसर्ग, मध्यसर्ग, अन्तसर्ग, १० विकरण आदि)। हिन्दी में इनकी संख्या २ दर्जन के लगभग है। अंग्रेजी में इनकी संख्या १ दर्जन से कुछ कम है और लैटिन में इनकी संख्या २०० के लगभग है।

सम्बन्धतत्त्वों के लगने से अंग (Stem) में कुछ विकार भी हो जाता है। जैसे—हरि + अः = हरयः, स्त्री + अः = स्त्रियः, नारी + अः = नार्यः, बालक + ओं = बालकों, कर + आ = किया, जा + आ = गया (भूतकाल)।

सम्बन्धतत्त्व के दो भेद—सम्बन्धतत्त्व या सम्बन्धदर्शी रूपिम के २ मुख्य भेद हैं—(क) शब्दसाधक रूपिम। (ख) रूपसाधक रूपिम।

(क) शब्दसाधक रूपिम—ये रूपिम (Morpheme) अंगरूपिम (Stem-Morpheme) के साथ जुड़कर शब्द या धातु बनाते हैं। ऐसे बने शब्दों या धातुओं को धातुज, व्युत्पन्न या यौगिक शब्द (Derivative Words) कहते हैं। कृत्, तद्धित, णिच्, सन् आदि प्रत्यय इसी प्रकार के हैं। ये शब्दसाधक रूपिम हैं। इनके लगाने से शब्द प्रातिपदिक बनते हैं। इनमें प्रकृति और प्रत्यय को पृथक् किया जा सकता है। प्रत्ययों का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं हो सकता है, अतः ये बद्धरूपिम (Bound Morpheme) हैं। इनसे बने शब्द मिश्र-रूपिम (Complex Morpheme) होते हैं। जैसे—कृ + अक = कारक, देव + इक = दैविक, लोक + इक = लौकिक, पठ् + णिच् = पाठय (पढ़ाना), कृ + सन् = चिकीर्ष, चिकीर्षा, चिकीर्षु (करने की इच्छा वाला) आदि।

(ख) रूपसाधक रूपिम—ये रूपिम धातु या शब्द से लगते हैं। इनके लगने से शब्दरूप और धातुरूप आदि बनते हैं। ये सदा बद्ध-रूपिम (Bound Morpheme) हैं। इनसे बने रूपों को पद (सुबन्त या तिङन्त रूप) (Inflected words) कहते हैं। ये रूपिम हैं—सुप्, तिङ्, आदि, ता, गा, आ, था,

Scanned with CamScanner

अध्याय ७

वाक्य-विज्ञान (Syntax)

वाक्यानां रचना भेदाः, परिवृत्तिः पदक्रमः ।
वाक्य-विश्लेषणं चैव, वाक्यविज्ञानमिष्यते ॥ (कपिलस्य)

(वाक्य-विज्ञान में निम्नलिखित बातों का विवेचन किया जाता है—वाक्यों की रचना, वाक्यों के प्रकार (भेद), वाक्यों में परिवर्तन, वाक्यों में पदक्रम (पद-विन्यास) और वाक्यों का विश्लेषण।)

७.१. वाक्य–विज्ञान का स्वरूप

वाक्य-विज्ञान में भाषा में प्रयुक्त विभिन्न पदों के परस्पर सम्बन्ध का विचार किया जाता है। अतएव वाक्य-विज्ञान में इन सभी विषयों का समावेश हो जाता है—वाक्य का स्वरूप, वाक्य की परिभाषा, वाक्य की रचना, वाक्य के अनिवार्य तत्त्व, वाक्य में पदों का विन्यास, वाक्यों के प्रकार, वाक्य का विभाजन, वाक्य में निकटस्थ अवयव, वाक्य में परिवर्तन, परिवर्तन की दिशाएँ, परिवर्तन के कारण, पदिम (Taxeme) आदि। इस प्रकार वाक्य-विज्ञान में वाक्य से संबद्ध सभी तत्त्वों का विवेचन किया जाता है।

पद-विज्ञान और वाक्य-विज्ञान में अन्तर यह है कि पद-विज्ञान में पदों की रचना का विवेचन होता है। अतः उसमें पदविभाजन (संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि), कारक, विभक्ति, वचन, लिंग, काल, पुरुष आदि के बोधक शब्द किस प्रकार बनते हैं, इस पर विचार किया जाता है। वाक्य-विज्ञान उससे अगली कोटि है। इसमें पूर्वोक्त विधि से बने हुए पदों का कहाँ, किस प्रकार प्रयोग होता है, पदों को किस प्रकार रखना या सजाना चाहिए, उनको विभिन्न प्रकार से रखने से अर्थ में क्या अन्तर होता है, आदि विषयों का विवेचन है। ध्वनि निर्मापक तत्त्व हैं। जैसे मिट्टी, कपास आदि; पद बने हुए वे तत्त्व हैं, जिनका उपयोग किया जा सकता है, जैसे—ईंट, वस्त्र आदि; वाक्य वह रूप है, जो वास्तविक रूप में प्रयोग में आता है, जैसे—मकान, सिले वस्त्र आदि। पद ईंट है तो वाक्य मकान या भवन।

तात्त्विक दृष्टि से ध्वनि, पद और वाक्य में मौलिक अन्तर है। ध्वनि मूलतः उच्चारण से संबद्ध है। यह शारीरिक व्यापार से उत्पन्न होती है, अतः ध्वनि में मुख्यतया शारीरिक व्यापार प्रधान है। पद में ध्वनि और सार्थकता दोनों का समन्वय है। ध्वनि

Scanned with CamScanner

शारीरिक पक्ष है और सार्थकता मानसिक पक्ष है। पद में शारीरिक और मानसिक दोनों तत्त्वों के समन्वय से वह वाक्य में प्रयोग के योग्य बन जाता है। सार्थकता का सम्बन्ध विचार से है। विचार मन का कार्य है, अतः पद में मानसिक व्यापार भी है। वाक्य में विचार, विचारों का समन्वय, सार्थक एवं समन्वित रूप में अभिव्यक्ति, ये सभी कार्य विचार और चिन्तन से संबद्ध हैं, अतः मानसिक कार्य हैं। वाक्य में मानसिक अथवा मनोवैज्ञानिक पक्ष मुख्य होता है। विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य से होती है, अतः वाक्य ही भाषा का सूक्ष्मतम सार्थक इकाई माना जाता है। इनका भेद इस प्रकार भी प्रकट किया जा सकता है—१. **ध्वनि**—उच्चारण से संबद्ध है, शारीरिक तत्त्व मुख्य है, प्राकृतिक तत्त्व की प्रधानता के कारण प्रकृति के तुल्य 'सत्' है। २. **पद**—इसमें शारीरिक और मानसिक दोनों तत्त्व हैं, सत् के साथ चित् भी है, अतः 'सच्चित्' रूप है। ३. **वाक्य**—मानसिक पक्ष की पूर्ण प्रधानता के कारण भाषा का अभिव्यक्त रूप है, अतः 'आनन्द' रूप या 'सच्चिदानन्द' रूप है। वाक्य ही सार्थकता के कारण रसरूप या आनन्दरूप होता है। भावानुभूति, रसानुभूति या आनन्दानुभूति का साधन वाक्य ही है। वाक्य सत्, चित्, आनन्द का समन्वित रूप है, अतः दार्शनिक भाषा में इसे 'सच्चिदानन्द' कह सकते हैं।

७.२ पद और वाक्य (अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद)

पद और वाक्य के सापेक्ष महत्त्व पर दार्शनिकों में पर्याप्त विवाद है। इस विषय पर न्यायदर्शन, मीमांसादर्शन और व्याकरण-दर्शन में बहुत विस्तार से विचार हुआ है। मीमांसा के दो प्रमुख आचार्यों ने पद और वाक्य के सापेक्ष महत्त्व पर दो विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं—

(१) **अभिहितान्वयवाद**[1]—इस वाद के प्रवर्तक आचार्य कुमारिल भट्ट हैं। इनका मत '**अभिहितान्वयवाद**' कहा जाता है। इसका अर्थ है—'**अभिहितानां पदार्थानाम् अन्वयः**' पद अपने अर्थ को कहते हैं और उनका वाक्य में अन्वय हो जाता है। इस अन्वय से एक विशिष्ट प्रकार का वाक्यार्थ निकलता है। इस वाद को 'पद-वाद' कह सकते हैं। इस वाद में पदों का महत्त्व है और पद-समूह ही वाक्य है। पद के अतिरिक्त वाक्य का कोई महत्त्व नहीं है।

(२) **अन्विताभिधानवाद**[1]—इस वाद के प्रवर्तक आचार्य कुमारिल भट्ट के शिष्य आचार्य प्रभाकर गुरु हैं। इनका नाम प्रभाकर है। योग्यता में अपने गुरु कुमारिल से भी अधिक बढ़े हुए थे, अतः अपने गुरु का भी गुरु हो जाने के कारण इन्हें 'गुरु' कहा जाने लगा। इनका मत '**अन्विताभिधानवाद**' कहा जाता है। इसका अर्थ है—'**अन्वितानां पदार्थानाम् अभिधानम्**' वाक्य में पदों के अर्थ समन्वित रूप से विद्यमान

इसमें दो बातों पर विशेष बल दिया गया है—

(क) वाक्य शब्दों का समूह है।

(ख) वाक्य पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराता है।

समीक्षा—भाषाशास्त्री वाक्य की उपर्युक्त दोनों विशेषताओं को पूर्णतया स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। उनके तर्क ये हैं—

(१) भाषा की इकाई वाक्य है, न कि शब्दसमूह या पद।

(२) यह आवश्यक नहीं है कि वाक्य शब्दों का समूह ही हो। एक पद वाले भी वाक्य प्रयोग में आते हैं। 'चलोगे?' 'हाँ', 'कहाँ से?' 'घर से', 'कुतः' 'नद्याः' आदि।

(३) अनेक भाषाओं में एक समस्त पद ही पूरे वाक्य का काम देता है।

(४) वाक्य भाषा का एक अंग है, वह पूर्ण की प्रतीति नहीं करा सकता। एक ग्रन्थ या भाषण में सहस्रों वाक्य होते हैं, तब पूर्ण की अभिव्यक्ति होती है। एक-एक वाक्य विचार-धारा की एक-एक तरंग मात्र हैं।

वाक्य की व्यावहारिक परिभाषा—वाक्य की निर्विवाद शास्त्रीय परिभाषा देना संभव नहीं है। व्यावहारिक दृष्टि से वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं—

'भाषा की लघुतम पूर्ण सार्थक इकाई को वाक्य कहते हैं।'

'सार्थं लघिष्ठं पूर्णार्थं वाक्यं स्याद् भाषणाङ्गकम्।' (कपिलस्य)

अर्थात् 'पूर्ण अर्थ की बोधक सार्थक लघुतम इकाई को वाक्य कहते हैं। यह भाषण या विचारों का एक अंग होता है।'

कोई भी वाक्य तात्त्विक रूप से पूर्ण अर्थ का बोध नहीं कराता है। वह विचार-धारा का एक अंश होता है। पूरा भाषण या पूरा ग्रन्थ ही पूर्ण अर्थ का बोधक होता है। उसे हम 'महावाक्य' कह सकते हैं। वाक्य उसका अंग होगा। पतंजलि ने वाक्य की सत्ता के साथ ही 'महावाक्य' की सत्ता भी मानी है और वाक्य को अंग माना है।

सा चावश्यं वाक्यसंज्ञा वक्तव्या, समानवाक्याधिकारश्च।

(महाभाष्य २-२-१)

७.४. वाक्य के अनिवार्य तत्त्व

अभिहितान्वयवादी आचार्य कुमारिल भट्ट आदि ने वाक्य में तीन तत्त्वों को अनिवार्य बताया है—१. आकांक्षा, २. योग्यता, ३. आसत्ति (संनिधि)। इसको ही आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है।

वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः। (सा० दर्पण २-१)

इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) **आकांक्षा**—आकांक्षा का अर्थ है—अपेक्षा या जिज्ञासा की असमाप्ति। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों को एक-दूसरे की अपेक्षा रहती है। कर्ता को कर्म और क्रिया की अपेक्षा रहती है; कर्म को कर्ता एवं क्रिया की तथा क्रिया को कर्ता एवं कर्म की। अपेक्षा को 'जिज्ञासा' भी कह सकते हैं। इस अपेक्षा या जिज्ञासा की पूर्ति होने पर ही वाक्य बनता

Scanned with CamScanner

है। आकांक्षा की पूर्ति के बिना वाक्य अपूर्ण रहता है। इसलिए वाक्य में पदों का साकांक्ष होना अनिवार्य है। साकांक्षता के कारण वाक्य में पद परस्पर संबद्ध (Inter-related) होते हैं। जैसे—केवल 'राम' कहने से वाक्य पूरा नहीं होता है। जिज्ञासा होती है कि वह क्या करता है?, 'पढ़ता है' कहने पर जिज्ञासा होती है कि 'कौन पढ़ता है?' क्या पढ़ता है?' इसी प्रकार केवल 'पुस्तक' कहने से भी वाक्य की पूर्ति नहीं होती। पुस्तक का क्या होता है? रामः पुस्तकं पठति (राम पुस्तक पढ़ता है), वाक्य में कर्ता 'राम', 'पुस्तक' नाम के कर्म को, 'पढ़ना' क्रिया करता है। ये तीनों पद 'रामः पुस्तकं पठति' परस्पर आकांक्षा-युक्त (साकांक्ष, अपेक्षायुक्त) हैं, अतः वाक्य पूर्ण हुआ। आकांक्षा के द्वारा श्रोता की जिज्ञासा की पूर्ति होती है, साकांक्ष पद ही वाक्य होते हैं। आकांक्षा-रहित गाय, अश्व, मनुष्य आदि शब्द वाक्य नहीं होते।

(२) योग्यता—योग्यता का अर्थ है—पदों में पारस्परिक संबंध की योग्यता या क्षमता। अर्थात्—पदों के द्वारा जो अर्थ कहा जा रहा है, उसको क्रियात्मक रूप देने की योग्यता या क्षमता होनी चाहिए। इसका अभिप्राय यह होता है कि पदों के अन्वय में कोई बाधा न हो। पदों के अन्वय में दो प्रकार से बाधा पड़ती है—(क) अर्थमूलक, (ख) व्याकरण-मूलक।

(क) अर्थमूलक बाधा या अयोग्यता—कोई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से ठीक हो, परन्तु अर्थ या प्रतीति की दृष्टि से अयोग्य या अनुपयुक्त हो तो वह वाक्य नहीं होगा। जैसे—स वह्निना सिञ्चति (वह आग से सींचता है), स वायुना लिखति (वह हवा से लिखता है)। आग से सींचा नहीं जा सकता है और न हवा से लिखा जा सकता है, अतः ये दोनों वाक्य व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने पर भी अर्थ की दृष्टि से अयोग्य हैं, अतः वाक्य नहीं हैं, यहाँ पर अर्थ या प्रतीति-सम्बन्धी बाधा है।

(ख) व्याकरण-मूलक बाधा या अयोग्यता—वाक्य यदि अर्थ की दृष्टि से ठीक हो और व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हो तो वह वाक्य नहीं माना जाएगा। लिंग, विभक्ति, वचन, विशेषण आदि में 'व्याकरणिक अन्विति' या एकरूपता होनी चाहिए। निम्नलिखित वाक्यों में व्याकरण की दृष्टि से अयोग्यता है—१. सुशीला जाता है। २. राम आती है। ३. मैं सुन्दरी पुस्तक देखता है। ४. राम ने बोला। इनमें लिंग, विभक्ति, विशेषण आदि की अयोग्यता है।

अंग्रेजी में व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता को Congruence या Concord कहते हैं। हिन्दी में व्याकरणिक एकरूपता को 'अन्विति' या 'पदों की अन्विति' कहते हैं। अंग्रेजी के Congruence या Concord का अभिप्राय संस्कृत के 'योग्यता' शब्द में समाहित है।

(३) आसत्ति (संनिधि)—आसत्ति का अर्थ है—समीपता। इसको ही संनिधि भी कहते हैं। समीपता से अभिप्राय है कि वाक्य में प्रयुक्त पद लगातार या क्रमबद्ध रूप से उच्चरित हों। बीच में आवश्यकता से अधिक समय देने पर उन पदों का क्रम टूट जाएगा और वे वाक्य नहीं बनेंगे। 'मैं खाना खाता हूँ' में 'मैं खाना' आज बोला गया और २ घंटे

Scanned with CamScanner

पर, छत + पर, पेड़ + से आदि। ये वाक्यांश किसी संज्ञा-शब्द आदि के विशेषक के रूप में आते हैं। जैसे—हाथ से काम करो, घर पर पुस्तक है, छत पर पक्षी है। इनमें 'हाथ से', 'घर पर' आदि वाक्यांश काम, पुस्तक आदि के विशेषक (Attribute) के रूप में हैं।

रचना-वृक्ष

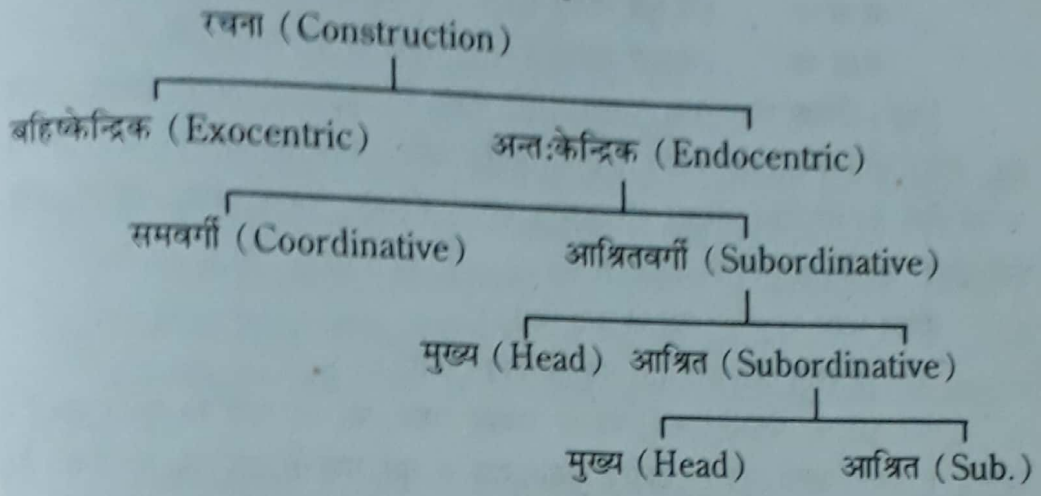

७.८. वाक्यों के प्रकार

विभिन्न दृष्टिकोण से विचार करने पर भाषा में प्रयुक्त वाक्यों के अनेक प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं। इनको संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है—

१. आकृति-मूलक भेद
२. रचना-मूलक भेद
३. अर्थ-मूलक भेद
४. क्रिया-मूलक भेद
५. शैली-मूलक भेद

१. आकृतिमूलक भेद—विश्व की भाषाओं का आकृतिमूलक-भेद (Morphological classification) किया जाता है। प्रकृति (Root) और प्रत्यय (Affix) या अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व किस प्रकार मिलते हैं, इसके आधार पर वाक्य भी चार प्रकार के मिलते हैं—

(क) अयोगात्मक (Isolating) वाक्य।
(ख) श्लिष्ट योगात्मक (Inflectional) वाक्य।
(ग) अश्लिष्ट योगात्मक (Agglutinative) वाक्य।
(घ) प्रश्लिष्ट योगात्मक (Incorporating) वाक्य।

(क) अयोगात्मक वाक्य—अयोग का अर्थ है—प्रकृति और प्रत्यय अथवा अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व का मिला हुआ न होना। अयोगात्मक भाषाओं में प्रकृति-प्रत्यय अलग-अलग रहते हैं। इनमें कारक-चिह्न आदि स्वतन्त्र शब्द होते हैं। चीनी भाषा

Scanned with CamScanner

अयोगात्मक भाषा है। इसमें पद-क्रम निश्चित है—कर्ता, क्रिया, कर्म। विशेषण कर्ता के पूर्व आता है। जैसे—

१. ता जेन	(बड़ा आदमी),	(ता-बड़ा, जेन-आदमी)
जेन ता	(आदमी बड़ा है)	(इसमें 'ता' विधेय हो गया है)
२. वो ता नी	(मैं तुझे मारता हूँ)	(वो-मैं, ता-मारना, नी-तुम)
नी ता वो	(तू मुझे मारता है),	(नी-तू, ता-मारना, वो-मैं)

(ख) श्लिष्ट योगात्मक वाक्य—ऐसे वाक्य में प्रकृति और प्रत्यय श्लिष्ट (मिले हुए, जुड़े) होते हैं। इनमें प्रकृति (शब्द, धातु) और प्रत्यय को अलग-अलग करना कठिन होता है। भारोपीय परिवार की प्राचीन भाषाएँ संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, अवेस्ता आदि इसी प्रकार की हैं। संस्कृत के उदाहरण हैं—

वृक्षात् पत्रम् अपतत् (पेड़ से पत्ता गिरा)।

अहं गुरुं द्रष्टुम् अगच्छम् (मैं गुरु को देखने गया)।

यहाँ वृक्ष + पंचमी एक०, पत्र + प्रथमा एक०, पत् + लङ् प्र० पु० एक० है। अस्मद् + प्रथमा एक०, गुरु + द्वितीया एक०, दृश् + तुम्, गम् + लङ् उ० पु० एक० है। इन वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय को सरलता से अलग नहीं किया जा सकता है।

(ग) अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य—ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय अथवा अर्थतत्त्व और सम्बन्धतत्त्व अश्लिष्ट (घनिष्ठता से न मिलना) ढंग से मिले हुए होते हैं। प्रकृति और प्रत्यय जुड़े होने पर भी तिल-तण्डुल-वत् (तिल और चावल की तरह) अलग-अलग देखे जा सकते हैं। तुर्की भाषा में इसके सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। जैसे—एल्-इम्-डे-कि (मेरे हाथ में है, एल्-हाथ, इम्-मेरा, डे-में, कि-होना) (El-im-de-ki)।

(घ) प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य—ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय इतने अधिक घनिष्ठ रूप में मिल जाते हैं कि पदों को पृथक् करना कठिन होता है। पूरा वाक्य एक शब्द-सा हो जाता है। ऐसे उदाहरण दक्षिण अमेरिका की चेरोकी भाषा, पेरीनीज पर्वत के पश्चिमी भाग में बोली जानेवाली बास्क भाषा आदि में मिलते हैं।

१. चेरोकी में—नाधोलिनिन (हमारे पास नाव लाओ)

२. बास्क में—हकारत (मैं तुझे ले जाता हूँ)

हिन्दी आदि की बोल-चाल की भाषा में ऐसे उदाहरण मिलते हैं—

१. भोजपुरी—सुनलेहलीहं (मैंने सुन लिया है)

२. मेरठ की बोली—उन्नेका (उसने कहा)

३. गुजराती—मकुंजे (मैं कह्युं जे, मैंने यह कहा कि)

२. रचना-मूलक भेद—वाक्य की रचना या गठन के आधार पर वाक्य के तीन भेद होते हैं—

(क) सामान्य (सरल या साधारण) वाक्य (Simple sentence)

(ख) मिश्र वाक्य (Complex sentence)

(ग) संयुक्त वाक्य (Compound sentence)

Scanned with CamScanner

(क) सामान्य वाक्य—इसमें एक उद्देश्य होता है और एक विधेय अर्थात् एक संज्ञा और एक क्रिया। जैसे—वह पुस्तक पढ़ता है।

(ख) मिश्र वाक्य—इसमें एक मुख्य उपवाक्य होता है और उसके आश्रित एक या अनेक उपवाक्य होते हैं। जैसे—

१. यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः।
२. यस्यार्थाः तस्य मित्राणि।
३. जिसके पास धन होता है, उसके सभी मित्र होते हैं।
४. जिसके पास विद्या है, उसका सर्वत्र आदर होता है।

(ग) संयुक्त वाक्य—इसमें एक से अधिक प्रधान उपवाक्य होते हैं। इनके साथ आश्रित उपवाक्य एक या अनेक होते हैं अथवा नहीं भी होते हैं। जैसे—

१. जब मैं गुरु की कुटी पर पहुँचा तो वे स्नान करने नदी पर गए थे।
२. यदाऽहं गुरुगृहं प्रापम्, तदा स स्नानार्थं नदीं गत आसीत्।

३. अर्थमूलक भेद—अर्थ या भाव (Mood) की दृष्टि से वाक्य के प्रमुख ८ भेद किए जाते हैं—

१. विधि-वाक्य	कृष्ण काम करता है।
२. निषेध-वाक्य	कृष्ण काम नहीं करता है।
३. प्रश्न-वाक्य	क्या कृष्ण काम करता है?
४. अनुज्ञा-वाक्य	तुम करो!
५. सन्देह-वाक्य	कृष्ण काम करता होगा।
६. इच्छार्थक वाक्य	ईश्वर, तुम्हें सद्बुद्धि दे।
७. संकेतार्थक वाक्य	यदि कृष्ण पढ़ता तो अवश्य उत्तीर्ण होता।
८. विस्मयार्थक वाक्य	अरे तुम उत्तीर्ण हो गए!

सुर आदि के आधार पर अन्य भेद भी किए जा सकते हैं।

४. क्रिया-मूलक भेद—वाक्य में क्रिया के आधार पर दो भेद होते हैं—(क) क्रियायुक्त वाक्य, (ख) क्रियाहीन वाक्य।

(क) क्रियायुक्त वाक्य—सामान्यतया सभी भाषाओं में एक वाक्य में एक क्रिया होती है। वह विधेय के रूप में होती है। अधिकांश वाक्य इसी कोटि में आते हैं। जैसे—सः पुस्तकं पठति (वह पुस्तक पढ़ता है)।

वाच्य (Voice) के आधार पर क्रियायुक्त वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—१. कर्तृवाच्य, २. कर्मवाच्य, ३. भाववाच्य।

१. **कर्तृवाच्य** में कर्ता मुख्य होता है। कर्ता में प्रथमा होती है। जैसे—रामः पुस्तकं पठति (राम पुस्तक पढ़ता है)। २. **कर्मवाच्य** में कर्म मुख्य होता है, अतः कर्म में प्रथमा होती है और कर्ता में तृतीया। जैसे—मया पुस्तकं पठ्यते (मेरे द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है)। ३. **भाववाच्य** में क्रिया मुख्य होती है। कर्म नहीं होता। कर्ता में तृतीया होती है और क्रिया में सदा प्रथम पुरुष एकवचन होता है। जैसे—मया हस्यते (मेरे द्वारा हँसा

Scanned with CamScanner

जाता है), मया हसितम् (मैं हँसा)।

(ख) क्रियाहीन वाक्य—प्रचलन के आधार पर कई भाषाओं में क्रियाहीन वाक्यों का भी प्रयोग होता है। वहाँ क्रियापद गुप्त रहता है।

१. प्रचलन-मूलक—प्रचलन के आधार पर संस्कृत, रूसी, बंगला आदि में सहायक क्रिया के बिना भी वाक्यों का प्रयोग होता है। क्रिया अन्तर्निहित (Understood) मानी जाती है। हिन्दी, अंग्रेजी में सामान्यतया सहायक क्रिया का होना अनिवार्य है। जैसे—

संस्कृत—इदं मम गृहम् (यह मेरा घर है)

रूसी—एता मोय दोम (यह मेरा घर है)

बंगला—एइ आमार बाड़ी (यह मेरा घर है)

२. प्रश्न-वाक्य—प्रश्न-वाक्यों में प्रश्न और उत्तर दोनों स्थलों पर या केवल उत्तर-वाक्य में क्रिया नहीं होती। जैसे—

प्रश्न—कस्मात् त्वम् (कहाँ से?)

उत्तर—प्रयागात् (प्रयाग से)

यहाँ पर पूरा प्रश्न वाक्य होगा—तुम कहाँ से आ रहे हो? उत्तर—मैं प्रयाग से आ रहा हूँ। प्रयत्नलाघव के कारण क्रियाहीन वाक्य का प्रयोग होता है।

३. मुहावरों में—लोकोक्तियों या मुहावरों में क्रियाहीन वाक्यों का प्रयोग होता है। जैसे, यथा राजा तथा प्रजा (जैसा राजा वैसी प्रजा); गुणाः पूजास्थानम् (गुण पूजा के स्थान हैं); प्रज्ञाहीनः अन्ध एव (बुद्धिहीन अन्धा है); घर का जोगी जोगना आन गाँव का सिद्ध, आम के आम गुठली के दाम; सत्यं शिवं सुन्दरम्; जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ।

४. विज्ञापनों, समाचार-पत्रादि के शीर्षकों में—'बूढ़े से जवान', 'नक्कालों से सावधान', 'देश में दुर्भिक्ष', 'युवती पर हमला', 'हिन्दुओं सावधान', 'इस्लाम खतरे में' आदि।

५. आतंक, भय, विस्मय आदि के सूचक पदों में—आग!, चोर-चोर!, हाय दुर्भाग्य!, बाढ़-बाढ़!, भूकम्प!

५. शैली-मूलक भेद—शैली के आधार पर वाक्यों के तीन भेद किए जाते हैं—१. शिथिल वाक्य, २. समीकृत, ३. आवर्तक।

१. शिथिल वाक्य—इसमें अलंकृत या मुहावरेदार वाक्य की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है। वक्ता या लेखक मनमाने ढंग से बात कहता है। जैसे—'एक थी रानी कुन्ती, उसके पाँच पुत्तर, एक का नाम युधिष्ठिर, एक का नाम भीम, एक का नाम कुछ और, एक का नाम कुछ और, एक का नाम भूल गया।' यह कथावाचकों आदि की शैली होती है।

२. समीकृत वाक्य—इसमें संतुलन और संगति का ध्यान रखा जाता है। जैसे, यस्यार्थाः तस्य मित्राणि (जिसके पास पैसा, उसी के मित्र), यतो धर्मस्ततो जयः, इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः, यथा राजा तथा प्रजा, जिसकी लाठी उसकी भैंस, न घर का न घाट का। समीकृत वाक्य विरोधमूलक भी होते हैं। जैसे—कहाँ हंस कहाँ बगुला, कहाँ राजा कहाँ

Scanned with CamScanner

को अन्तर्भवन्तः। 'राम वन गया' को 'राम वन गए'। इसी प्रकार 'आपके शुभदर्शन हुए', 'आप कब पधारे', 'हमारा (मेरा) अनुरोध है'।

(७) **प्रत्यक्ष** (Direct) **और अप्रत्यक्ष** (Indirect) **कथन**—अंग्रेजी के वाक्यगठन के प्रभाव के कारण हिन्दी में भी तदनुरूप वाक्यों का प्रयोग होने लगा है। 'शीला ने कहा कि मैं कल नहीं आऊँगी' के स्थान पर 'शीला ने कहा कि वह कल नहीं आएगी।'

(८) **कारक के लिए अर्धविराम** (Comma)—अंग्रेजी के अनुसरण पर हिन्दी में भी संक्षेप के लिए कारक-चिह्नों के स्थान पर अर्ध-विराम (कॉमा) का प्रयोग होता है। जैसे—

'प्रयाग विश्वविद्यालय के कुलपति' के स्थान पर 'कुलपति, प्रयाग विश्वविद्यालय'। इसी प्रकार 'अध्यक्ष, लोकसभा' 'प्रधानमन्त्री, भारत सरकार' आदि।

७.१२. वाक्य–परिवर्तन के कारण
(Causes of Syntactical changes)

१. अन्य भाषाओं का प्रभाव—विश्व की विविध भाषाओं के परस्पर सम्पर्क के कारण भाषाओं के वाक्य-गठन पर प्रभाव पड़ता है। भारत में यवनों के आगमन के साथ अरबी, फारसी आई और अंग्रेजों के साथ अंग्रेजी। दोनों का प्रभाव हिन्दी भाषा पर पड़ा है। वाक्यों में 'कि' और 'चूँकि' का प्रयोग फारसी का प्रभाव है। हिन्दी के प्रारम्भिक साहित्य में 'कि' वाले प्रयोग नहीं मिलते हैं। संस्कृत में 'कि' के लिए 'यत्' निपात है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कथन वाले वाक्यों में अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा है। 'सीता ने कहा कि मैं भी वन जाऊँगी' के स्थान पर 'सीता ने कहा कि वह भी वन जाएगी'। अंग्रेजी के प्रभाव के कारण हिन्दी में भी बड़े-बड़े वाक्यों की रचना होने लगी है। संस्कृत में विशेषण-बहुल लम्बे वाक्य दूसरे ढंग के हैं। अंग्रेजी के प्रभाव के कारण क्रिया के बाद कर्म का प्रयोग भी कुछ चलने लगा है—'वह पुस्तक पढ़ता है' के स्थान पर 'वह पढ़ता है पुस्तक'। इसी प्रकार के वाक्य हैं—मैं पीता हूँ चाय, मैं लाया हूँ गुड़िया, मैं खाता हूँ मक्खन, आदि।

संस्कृत में किसी अन्य के कथन को 'इति' बाद में लगाकर कहा जाता है। इसके लिए अब हिन्दी में ' ' इन्वर्टेड कामा का प्रयोग अंग्रेजी की देन है। स तथास्तु इत्युक्त्वा अन्तर्हितः (वह 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गए)।

२. विभक्तियों का घिस जाना—संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि प्राचीन भाषाएँ संयोगात्मक (Synthetical) थीं। विकासक्रम के अनुसार वे वियोगात्मक (Analytical) हो गईं। इसके परिणामस्वरूप वाक्य-रचना में अन्तर आ गया। विभक्तियों, प्रत्ययों का कार्य परसर्गों, सहायक क्रिया आदि से लिया जाने लगा। संयोगात्मक अवस्था में पदक्रम में परिवर्तन हो सकता था। कर्ता, कर्म, क्रिया को आगे-पीछे रख सकते थे, परन्तु वियोगात्मक अवस्था में पदक्रम निश्चित हो जाता है, जैसा कि हिन्दी, अंग्रेजी आदि में

Scanned with CamScanner

विद्यमान है। इसमें कर्ता और कर्म का स्थान बदलने पर अर्थ का अनर्थ हो जाता है। हिन्दी में ने (तृ० एक० एन), पर (उपरि) आदि घिसे हुए कारक-चिह्न हैं।

३. **बलाघात**—बलाघात के कारण वाक्य-गठन में परिवर्तन हो जाता है। 'मैं पराजय जैसी चीज नहीं जानता,' के स्थान पर 'पराजय, मैं नहीं जानता'।

४. **स्पष्टता**—स्पष्टता के लिए वाक्य-गठन में परिवर्तन होता है। इसके लिए कोष्ठ या डैश का प्रयोग होता है। 'अमरत्व (मोक्ष की कामना) मानव-जीवन का लक्ष्य है'।

५. **मन:स्थिति**—वक्ता की मानसिक स्थिति के कारण वाक्य-गठन पर प्रभाव पड़ता है। शोक, दु:ख, युद्धकाल, विपत्ति, संघर्ष आदि के समय मन:स्थिति क्षुब्ध होती है, अत: ऐसे समय में सरल, स्पष्ट, तीखी और गंभीर भाषा का प्रयोग होता है। ऐसे समय में अलंकृत पदावली नहीं चलती। अन्य अवसरों पर अलंकृत भाषा का ही महत्त्व है।

६. **नवीनता की प्रवृत्ति**—नवीनता की प्रवृत्ति के कारण वाक्य-गठन में परिवर्तन होता है। जैसे—'मात्र' का प्रयोग। 'पुस्तक का मूल्य दो रुपए मात्र' के स्थान पर 'पुस्तक का मूल्य मात्र दो रुपए।' विशेष्य के बाद विशेषण का प्रयोग—'दुकान गरीब की' आदि।

७. **अज्ञानता**—अज्ञानता के कारण अशुद्ध वाक्य-प्रयोग। श्रेष्ठ के स्थान पर 'श्रेष्ठतम', 'महत्ता' को 'महानता', 'विद्वत्ता' को 'विद्वानता', 'दर असल' के स्थान पर 'दर असल में'।

८. **अनुकरण**—अन्य भाषाओं के अनुकरण के कारण वाक्य-रचना में परिवर्तन होता है। अंग्रेजी वाक्य-रचना के अनुकरण पर हिन्दी में भी तदनुरूप रचना इसका ही परिणाम है। 'रमा ने कहा कि मैं कल पढ़ने नहीं जाऊँगी' के स्थान पर 'रमा ने कहा कि वह कल पढ़ने नहीं जाएगी'।

९. **परम्परावाद**—संस्कृत में प्राचीन परम्परा के प्रति अनुराग है और हिन्दी में परम्परावादिता के विरुद्ध संघर्ष है। इसके फलस्वरूप वाक्य-रचना में भी अन्तर होता है। संस्कृत में विशेष्य के अनुसार विशेषण में भी लिंग-वचन होते हैं। हिन्दी में विशेषण में अन्तर नहीं किया जाता है। हिन्दी में वर-वधू आदि दोनों को—आयुष्मान् हो, संबोधन में भी प्रिया, प्रेयसी, प्रियतमा आदि; विद्वान् शिष्य एवं शिष्याएँ आदि। संस्कृत के विद्वान् वर को आयुष्मान् हो, वधू को आयुष्मती हो, कहेंगे। संबोधन में प्रिये, प्रेयसि, प्रियतमे, कहेंगे। वे विद्वान् शिष्य और विदुषी शिष्याएँ, कहेंगे। वे पूज्य पिताजी, पूजनीया माताजी, लिखेंगे।

इसी प्रकार आदरार्थ में बहुवचन का प्रयोग वाक्यों में मिलता है। 'राम वन गए।' 'उनका राज्याभिषेक हुआ', 'गुरु जी आ गए।'

७.१३. पदिम (Taxeme)

प्रो० ब्लूमफील्ड ने सर्वप्रथम इस Taxeme (टैक्सीम) शब्द का प्रयोग किया था। अब इसका प्रचलन समाप्त होता जा रहा है। Taxeme शब्द Syntax के Tax शब्द को लेकर eme (ईम) प्रत्यय लगाकर बना है। 'टैक्सीम' शब्द के लिए हिन्दी में 'पदिम'

Scanned with CamScanner

शब्द का प्रयोग होता है। पदिम के लिए अंग्रेजी में ग्रीक शब्द Syntagma (सीनटेग्मा) भी चलता है। इसका अर्थ है—एक साथ रखे हुए पद।

पदिम क्या है?—वाक्य के लघुतम अवयव को 'पदिम' कहते हैं।[1] वाक्य का लघुतम अवयव 'पद' होता है। वाक्य के अंग के रूप में 'पद' का अध्ययन 'पदिम' है। वाक्य में पद किस प्रकार कार्य करते हैं; वे किन अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं; उनके स्थान-परिवर्तन से क्या अर्थभेद होता है?—आदि का विवेचन 'पदिम' का विषय है। पदिम के अवयव को 'संपद' (Allotax) कहते हैं।

७.६. में रचना के आधार पर वाक्य के तीन भेद किए गए हैं—सामान्य वाक्य, मिश्र वाक्य और संयुक्त वाक्य। Taxeme (पदिम) में इन तीनों प्रकार के वाक्यों का चार प्रकार से अध्ययन किया जाता है—

(क) पदक्रम (Order, Word or Morpheme order)—पदों को किस क्रम से रखना चाहिए तथा सम्बन्धतत्त्व का क्या क्रम होगा। इसका इसमें विचार होता है।

(ख) स्वर-परिवर्तन (Modulation)—वाक्यों में संगीतात्मक और बलात्मक स्वराघातों का प्रभाव तथा उनसे होनेवाले अर्थभेद का अध्ययन पदिम का विषय है।

(ग) ध्वनि-परिवर्तन (Phonetic modification)—वाक्य में होने वाले ध्वनि-परिवर्तनों का अध्ययन। ये परिवर्तन संधि, समास आदि के द्वारा होते हैं। जैसे—महान् + आत्मा = महात्मा, राजन् + सखि = राजसखः, मध्य + अहन् = मध्याह्न, Roy > Regal > Regular।

(घ) चयन (Selection)—वाक्य में उपयुक्त शब्दों का चयन करके प्रयोग करना। संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि में अत्यन्त उपयुक्त शब्दों को छाँटना और उनका प्रयोग करना। विशेष विवरण के लिए ७.५. शीर्षक देखें।

Syntax में ही इन सभी बातों का विवेचन एवं विश्लेषण किया जाता है। अतः Taxeme (पदिम) के अलग विवेचन की आवश्यकता नहीं मानी जाती है।

*

Scanned with CamScanner

अध्याय ८

अर्थविज्ञान (Semantics)

विकासोऽर्थस्य तद्भेदाः, परिवृत्तेश्च हेतवः ।
एकानेकार्थसंज्ञानम्, अर्थविज्ञानमिष्यते ॥ (कपिलस्य)

(अर्थविकास, अर्थविकास के भेद, अर्थ-परिवर्तन के कारण, एकार्थक और अनेकार्थक शब्दों के अर्थ का निर्णय, अर्थविज्ञान है।)

८.१. अर्थविज्ञान क्या है?

अर्थ शब्द की आत्मा है, शब्द-शरीर है। ध्वनि-विज्ञान, पद-विज्ञान और वाक्य-विज्ञान भाषा के शरीर हैं। इनमें भाषा के शरीर या बाह्यरूप का विवेचन, विश्लेषण किया जाता है। अर्थ आत्मा है। अर्थविज्ञान में शब्दार्थ के आन्तरिक पक्ष का विवेचन, विश्लेषण किया जाता है। अर्थ क्या है? अर्थ का ज्ञान कैसे होता है? शब्द और अर्थ में क्या सम्बन्ध है? संकेतग्रह कैसे होता है? मन में बिम्ब-निर्माण कैसे होता है? बिम्ब से अर्थबोध की प्रक्रिया आदि भाषा के आन्तरिक पक्ष हैं। अर्थविज्ञान में शब्दों के अर्थ में विकास, अर्थविकास की दिशाएँ, अर्थपरिवर्तन के कारण, एकार्थक और अनेकार्थक शब्दों के अर्थ का निर्णय, संकेतग्रह के साधन आदि अर्थविज्ञान के बाह्य पक्ष हैं।

जिस प्रकार शरीर के ज्ञान के बाद आत्मा का ज्ञान अपेक्षित है, उसी प्रकार ध्वनि, पद, वाक्य के ज्ञान के बाद अर्थरूपी आत्मा का ज्ञान अपेक्षित एवं अनिवार्य है। अतएव भर्तृहरि ने वाक्यार्थरूपी प्रतिभा को आत्मा कहा है—

यत्रेत्रः प्रतिभात्माऽयं भेदरूपः प्रतीयते। (वाक्यपदीय १-११८)

८.२. अर्थविज्ञान का नामकरण

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में अर्थसम्बन्धी विवेचन को अर्थविज्ञान नाम दिया है।

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा ।
ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥
(महाभारत, वनपर्व २-१६)

यथा च चोदनाशब्दो वैदिक्यामेव वर्तते ।
शब्दज्ञानार्थविज्ञानशब्दौ शास्त्रे तथा स्थितौ ॥
(श्लोकवार्तिक, शब्दपरिच्छेद-१३)

भाषाविज्ञान के अर्थ-विषयक विवेचन को आजकल अंग्रेजी में Semantics

Scanned with CamScanner

(सीमेन्टिक्स) कहते हैं। यह नाम फ्रेंच विद्वान् मिशेल ब्रेआल (Michel Bre'al) द्वारा प्रचारित हुआ है। हिन्दी में इसके लिए अर्थविचार, शब्दार्थविचार, शब्दार्थ-विज्ञान आदि नाम भी प्रचलित रहे हैं। संप्रति अर्थविज्ञान नाम ही सर्वप्रिय है। अंग्रेजी में इसके लिए प्रारम्भ में अनेक नाम चले। जैसे—Rhematology (ऱ्हेमेटोलॉजी), Semasialogy (सीमेसिआलॉजी), Rhematics (ऱ्हेमेटिक्स), Sematology (सीमेटोलॉजी) आदि। एक दर्जन से अधिक नामों में से अब Semantics (सीमेन्टिक्स) नाम ही शेष रह गया है।

८.३. अर्थविज्ञान का इतिहास

विषय के रूप में 'अर्थविज्ञान' नया विषय है। प्रारम्भ में अनेक भाषाशास्त्रियों ने इसे दर्शन का विषय कहकर भाषाविज्ञान में रखने पर आपत्ति की थी। परन्तु अब यह भाषाशास्त्र का एक अंग बन गया है। भारतवर्ष में शब्द और अर्थ का विवेचन दर्शनशास्त्र का विषय रहा है। न्यायदर्शन और मीमांसादर्शन में शब्दशक्ति, शब्दार्थज्ञान, स्वतःप्रामाण्य—परतःप्रमाण्य आदि का गहन विवेचन हुआ है। वैदिक साहित्य में इन्द्र, वृत्र, वृत्रहा, नदी, उदक, तीर्थ आदि शब्दों की निरुक्ति (Etymology) मिलती हैं।[1] ऋग्वेद में अर्थ के महत्त्व पर कुछ मन्त्र हैं।[2] यास्ककृत निरुक्त ही अर्थविज्ञान का सर्वप्रथम भारतीय ग्रन्थ है। जिसमें निर्वचन के नियम, अर्थ का महत्त्व, मन्त्रार्थ की विधि, प्रकरण आदि का महत्त्व बताया गया है। इसके पश्चात् पतंजलिकृत 'महाभाष्य' और भर्तृहरि-कृत 'वाक्यपदीय' इस विषय के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।[3] अर्थविज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले पाश्चात्य विद्वान् हैं—फ्रेंच विद्वान् मिशेल ब्रेआल, जर्मन विद्वान् पाल, के० रीजिंग, ए० बेनरी, पोस्टगेट, ब्रुगमान, स्वीट आदि।

८.४. अर्थ का महत्त्व

आचार्य **पाणिनि** ने भाषा का सार 'अर्थ' माना है। अतएव 'अर्थवान्' या सार्थक

---

१. संदर्भ के लिए देखें लेखककृत 'संस्कृत व्याकरण' भूमिका, पृष्ठ १०-११।

२. (क) ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते॥
(ख) ऋग्० १०-७१-४ (ऋग्० १-१६४-३६)

३. पाश्चात्त्य विद्वानों के कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ये हैं—1. Michel Bre'al का Essai de semantique, 2. Ogden एवं Rechards का Meaning of Meaning, 3. Carnap का Introduction to Semantics, 4. Linsky का Semantics, 5. Ullmann का Principles of Semantics.
भारतीय विद्वानों के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ये हैं—१. डॉ० बाबूराम सक्सेना का 'अर्थविज्ञान', २. रवि बाबू का 'भाषातत्त्व', ३. डॉ० हरदेव बाहरी का Hindi Semantics, ४. लेखक-कृत 'अर्थविज्ञान और व्याकरण-दर्शन', ५. डॉ० भोलानाथ तिवारी का 'शब्दों का जीवन', 'शब्दों का अध्ययन', ६. डॉ० विश्वनाथ का 'अर्थतत्त्व की भूमिका', ७. प्रो० विजनविहारी भट्टाचार्य का 'वागर्थ'।

Scanned with CamScanner

(२) **पर-प्रत्यक्ष**—पर-प्रत्यक्ष का अर्थ है—जिसे पर या दूसरे ने देखा है। जिन देशों, स्थानों, पर्वतों, समुद्रों आदि को हमने स्वयं नहीं देखा है, उनका ज्ञान हम दूसरों के प्रत्यक्ष से करते हैं, जिन्होंने स्वयं उसे देखा है। पर-प्रत्यक्ष के आधार पर ही हम भूगोल में सभी देशों, नगरों, नदियों, समुद्रों, दर्शनीय स्थलों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। पर-प्रत्यक्ष में ही आप्तवाक्य, आप्त-वचन या प्रामाणिक व्यक्तियों के कथन भी आते हैं। अतएव वेद, शास्त्र, स्मृतियों आदि से हम पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, स्वर्ग-नरक, मोक्ष, ईश्वर, जीव, आत्मा-परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

८.७. शब्द और अर्थ का सम्बन्ध

संकेतग्रह—शब्द और अर्थ में कोई सम्बन्ध है या नहीं? यह प्रश्न स्वाभाविक है। 'गाय' कहने से 'गाय' पशु अर्थ ही क्यों लिया जाता है? अश्व आदि अन्य पशु क्यों नहीं? इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक सार्थक शब्द किसी अर्थ (वस्तु) विशेष का बोध कराता है। कौन सा शब्द किस अर्थ का बोध कराता है, यह संकेतग्रह पर निर्भर है। यह पहले कहा जा चुका है कि प्रत्येक भाषा में कोई शब्द किसी अर्थ को संकेतित करता है। प्रत्येक भाषा में इस शब्द का यह अर्थ होगा, यह संकेतित है। यह संकेत सामान्यतया स्वेच्छा-जन्य या यादृच्छिक (यदृच्छा-जन्य) होता है। प्रारम्भ में कोई व्यक्ति किसी विशेष अर्थ में किसी शब्द का प्रयोग करता है। बाद में वह शब्द उस समाज या उस भाषा में लोकप्रिय हो जाता है। वही उस शब्द का संकेतित अर्थ माना जाता है। एक ही शब्द (या ध्वनि-समूह) विभिन्न भाषाओं में विभिन्न अर्थ बताता है—अंग्रेजी Know (नो, जानना) संस्कृत और हिन्दी में निषेधार्थक 'नो' माना जायेगा, knee (नी, घुटना) संस्कृत के अनुसार 'नी' (ले जाना) होगा। अतः यह माना जाएगा कि किसी एक ध्वनि का कोई एक अर्थ नहीं है। किसी शब्द से किसी अर्थ का सम्बन्ध स्थापित करना 'संकेतग्रह' है। इसी प्रकार किसी ध्वनि-समूह से किसी वस्तु का सम्बन्ध स्थापित करना या बोध कराना 'संकेतग्रह' है। यह संकेतग्रह लोक-व्यवहार एवं अनुशासन से होता है।

आवाप-उद्वाप या अन्वय-व्यतिरेक—'तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् अन्वयः' 'तदभावे तदभावः व्यतिरेकः'। जिस शब्द के होने पर जो अर्थ बना रहेगा, उसे '**अन्वय**' कहेंगे। जिस शब्द के न होने पर जो अर्थ नहीं रहेगा, उसे '**व्यतिरेक**' कहेंगे। 'अन्वय' को '**आवाप**' और 'व्यतिरेक' को '**उद्वाप**' कहते हैं। बालक के अर्थज्ञान की प्रक्रिया को देखें तो ज्ञात होगा कि वह अन्वय-व्यतिरेक की पद्धति से भाषा सीखता है। 'गाय लाओ', 'गाय ले जाओ', 'घोड़ा लाओ', 'घोड़ा ले जाओ।' इन चार वाक्यों से बालक ४ शब्द सीखता है—गाय, घोड़ा, लाओ, ले जाओ। प्रथम दो वाक्यों में 'गाय' शब्द है। 'लाओ' कहने पर 'गाय' पशु लाया गया। 'ले जाओ' कहने पर वह 'गाय' हटाई गई। दोनों वाक्यों में 'गाय' शब्द रहा। इससे बालक को स्पष्ट हुआ कि 'गाय' शब्द का अर्थ यह गाय—

Scanned with CamScanner

'ले जाओ' से हटाना होता है, यह स्पष्ट हुआ। इस अन्वय-व्यतिरेक पद्धति से बालक को एक-एक शब्द का अर्थज्ञान होता है।

बिम्बनिर्माण—मनोविज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के मस्तिष्क पर प्रत्येक शब्द का बिम्ब (चित्र) अंकित होता है। यह बिम्ब स्थायी रूप से मस्तिष्क में बना रहता है। 'गाय' देखने पर गाय का बिम्ब अंकित हुआ। पुनः गाय देखने पर वह बिम्ब उद्बुद्ध हो जाता है और हम गाय को पहचान लेते हैं। इसी प्रकार वस्तु का बिम्ब मन पर अंकित होता है, साथ ही उसका वाचक शब्द (गाय आदि) भी संस्काररूप में अंकित हो जाता है। इस शब्द (गाय शब्द) और अर्थ या वस्तु (गाय-पशु) के स्थिर मानसिक संस्कार को **बिम्ब-निर्माण** कहते हैं। इस बिम्ब-निर्माण का फल यह होता है कि 'गाय' शब्द से 'गाय' अर्थ संबद्ध हो गया और भविष्य में 'गाय' पशु को देखते ही 'गाय' शब्द उपस्थित हो जाता है।

दार्शनिक दृष्टिकोण—दार्शनिक या भाषाशास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि शब्द और अर्थ अन्योन्याश्रित (Interrelated) हैं। शब्द शरीर है; अर्थ आत्मा है। दोनों को मिलाकर 'सार्थक शब्द' बनता है। अर्थ के बिना शरीर 'निर्जीव' है और शब्द के बिना 'अर्थ' अग्राह्य या अप्रयोज्य (प्रयोग के अयोग्य) है। शब्द मूर्तरूप देता है और अर्थ उसमें चेतनता देता है। अतः सार्थक प्रयोग के लिए दोनों का समन्वितरूप में उपस्थित होना अनिवार्य है। अतएव भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में शब्द और अर्थ को एकतत्त्व के ही दो अभिन्न अंग माने हैं।

एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ । (वाक्य० २-३१)

भर्तृहरि ने शब्द और अर्थ का वाचक-वाच्य सम्बन्ध माना है। वे 'अभिधा' शक्ति के अन्दर ही 'लक्षणा' और 'व्यंजना' का भी अन्तर्भाव मानते हैं।

अस्याऽयं वाचको वाच्य इति षष्ठ्या प्रतीयते ।
योगः शब्दार्थयोस्तत्त्वमप्यतो व्यपदिश्यते ॥ (वाक्य० ३-३-३)

८.८. संकेतग्रह (अर्थज्ञान) के साधन

आचार्य जगदीश ने 'शब्दशक्ति-प्रकाशिका' में संकेतग्रह या अर्थज्ञान के ८ साधन माने हैं—

Scanned with CamScanner

देवानां प्रियः—देवों का प्रिय, अशोक राजा अर्थ था, अब 'मूर्ख' अर्थ रह गया। (५) **घृणा**—संस्कृत में घृणा का 'दया' अर्थ भी था, अब केवल 'घृणा' अर्थ रह गया। (६) **महाराज**—बड़े राजा के लिए था, अब 'रसोइया' रह गया। (७) **भद्र-भद्दा**—भद्र 'सुशील' के अर्थ में था। उसका विकसित रूप 'भद्दा' 'गंदा-बुरा' अर्थ रह गया। (८) **चतुर्वेदी-चौबे**—चतुर्वेदी 'चारों वेदों के ज्ञाता' के लिए था, उसका विकसित रूप 'चौबे' केवल 'अधिक खाने वाला' अर्थ में रह गया। (९) **हरिजन-शिल्पकार**—हरिजन 'भक्त' के अर्थ में था, शिल्पकार—शिल्पी के अर्थ में था, अब दोनों शब्द 'शूद्र या अछूत' के अर्थ में हैं। (१०) **लिंग**—'चिह्न' अर्थ था, अब 'इन्द्रिय-विशेष' के लिए हो गया है। (११) **उद्धार-उधार**—उद्धार 'उद्धार करना', 'उधार' (उधार लेना) रह गया है। (१२) **मधुर**—मधुर (मीठा) भोजपुरी में 'माहुर' (विष) हो गया। (१३) **वज्रवटुक**—'पूर्ण ब्रह्मचारी' से 'बजरबट्टू' (महामूर्ख) हो गया। (१४) **आबदस्त**—नमाज पढ़ने से पूर्व हस्त-शुद्धि के लिए था, अब मलत्याग के बाद 'जल छूने' के लिए है। (१५) **कामशास्त्र, कोकशास्त्र**—काम-सम्बन्धी शास्त्र थे, अब 'सेक्स-साहित्य' के लिए हैं।

८.१५. अर्थ–परिवर्तन के कारण

अर्थ या शब्दार्थ यद्यपि काल्पनिक एवं सांकेतिक हैं, परन्तु अर्थबोध का साक्षात् सम्बन्ध मन से है। मानव मन गतिशील, चंचल, भावुक, संवेदनशील एवं नवीनता का प्रेमी है। अतः विभिन्न परिस्थितियों में मानव मन की स्थिति एक-सी नहीं होती है। यही कारण है कि राग-द्वेष, क्रोध, घृणा, आवेश आदि में उच्चरित शब्दों के अर्थों में अन्तर होता है। यह अर्थ-परिवर्तन प्रारम्भ में व्यक्तिगत होता है, परन्तु बाद में समाज के द्वारा स्वीकृत होने पर भाषा में ग्रहण कर लिया जाता है और भाषा का अंग बन जाता है। इस प्रकार **अर्थ-परिवर्तन की समस्त प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक है।**

मन की स्थितियों का भौतिक विश्लेषण नहीं किया जा सकता है, अतः अर्थ-परिवर्तन के कारणों की भी इयत्ता निर्धारित नहीं की जा सकती है। कभी-कभी अर्थ-परिवर्तन में एक के साथ दूसरा कारण भी सम्बद्ध होता है, अतः दोनों कारणों में उस उदाहरण को प्रस्तुत किया जाता है।

भारतीय काव्यशास्त्रियों—आचार्य मम्मट, विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि ने अर्थभेद या अर्थपरिवर्तन के कारण रूप में लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का सूक्ष्मतम विवेचन किया है। आगे दिए गए प्रायः सभी कारण लक्षणा और व्यंजना शक्तियों के भेदों में अन्तर्निहित हो जाते हैं। अन्य भाषा-प्रभाव आदि कारण उनके विचाराधीन नहीं थे। स्पष्टता के लिए काव्यशास्त्रीय पारिभाषिक नाम न देकर भाषाशास्त्रीय कारण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

पाश्चात्त्य विद्वानों में प्रो० टकर एवं मिशेल ब्रेआल ने इसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। डॉ० तारापोरवाला ने अपनी पुस्तक 'Elements of the Science of Language' में प्रो० टकर के अनुसार अर्थपरिवर्तन के १२ कारण माने हैं। अन्य

Scanned with CamScanner

अनुसंधानों को भी समन्वित करते हुए अर्थ-परिवर्तन के २४ कारण माने जाते हैं। उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

(१) लाक्षणिक-प्रयोग (Metaphor)—भावों और अनुभूतियों की सरल, सुन्दर एवं कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए लक्षणा शक्ति का आश्रय लिया जाता है। इससे भाषा में रोचकता एवं मधुरता आ जाती है। इसके लिए अनेक प्रकार अपनाए जाते हैं, जैसे—

(क) सादृश्य-मूलक वर्णन—निर्जीव में भी मानवीय अंगों का वर्णन। नारियल की **आँख**, आरी के **दाँत**, सुराही की **गर्दन**, घड़े का **मुँह**, पर्वत की **चोटी**, चारपाई के **पैर**, छन्द के **चरण** या **पाद**, मकान की **पीठ** (छत), गुफा का **पेट**।

(ख) गौण-प्रयोग—गुण-साम्य के आधार पर प्रयोग—सुन्दर कल्पना, कटु अनुभव, मधुर लय, मीठी मुस्कान, कटु सत्य, सरस साहित्य, नीरस भाषण, चटपटी बात आदि।

(ग) गुणसाम्य-मूलक प्रयोग—गुणों की समानता के आधार पर ऐसे प्रयोग होते हैं। राम सिंह है। गुणग्राही को हंस, डरपोक को गीदड़, मूर्ख को पशु या उल्लू, गन्दे को सूअर, महामूर्ख को गधा, खुशामदी को कुत्ता, भोले-भोले को गाय (गौ), कपटी एवं अपकारी को साँप (आस्तीन का साँप), दुर्जन को बिच्छू आदि।

(घ) कृतियों के लिए लेखक का नाम—शिशुपालवध महाकाव्य को 'माघ' माघ पढ़ रहा हूँ। 'कालिदास, अश्वघोष, भारवि या भवभूति पर शोध कार्य कर रहा हूँ', में कालिदास आदि से उनकी कृतियों का अभिप्राय है। 'आजकल सूर, तुलसी, प्रसाद, पन्त पर अनेक ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं' में भी उनकी कृतियों से अभिप्राय है।

(२) परिवेश-भेद (वातावरण में परिवर्तन)—परिवेश या वातावरण में अन्तर हो जाने के कारण शब्दों के अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। यह परिवेश-भेद अनेक प्रकार का हो सकता है—

(क) भौगोलिक परिवेश-भेद—भौगोलिक परिवेश में भेद के कारण शब्दों के अर्थ में अन्तर हो जाता है। वेद में '**उष्ट्र**' शब्द '**भैंसा**' के अर्थ में है। बाद में उष्ट्र का प्रयोग 'ऊँट' के अर्थ में होने लगा। इसका कारण आर्यों का भौगोलिक स्थान-परिवर्तन ज्ञात होता है। Corn (**कार्न**) शब्द के विभिन्न स्थानों पर विभिन्न अर्थ हैं—इंग्लैंड में 'गेहूँ', स्कॉटलैंड में 'बाजरा', अमेरिका में 'मक्का'। इसका एक मनोरंजक उदाहरण दिया जाता है कि गत युद्ध के समय अंग्रेजों ने अमेरिका से कार्न (गेहूँ) मँगाया था। अमेरिका वालों ने अपने अर्थ के अनुसार कार्न (मक्का) उन्हें भेज दिया। बाद में जाँच होने पर इसका यह भेद खुला। हिन्दी में '**खोता**', '**खोती**' समय नष्ट करने के लिए क्रियाशब्द हैं—समय खोता है, समय खोती है, परन्तु पंजाब में खोता (गधा), खोती (गधी) अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। 'भाइयो, वृथा समय क्यों खोते हो' भजन का संक्षिप्त रूप 'भाइयो क्यों तुम खोते हो, बहनो, क्यों तुम खोती हो' कहने पर अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

इस प्रकार पश्चिमी उत्तर प्रदेश में '**लाला**' का अर्थ '**वैश्य**' है, पूर्वी उत्तर प्रदेश में 'कायस्थ'। पश्चिमी उ० प्र० में '**चावल**' चावल अन्न और भात दोनों के लिए, पूर्वी उ० प्र०

Scanned with CamScanner

कुछ समय से लिंग्विस्टिक्स (Linguistics) शब्द का अधिक प्रचलन है, अतः उसके लिए भाषाशास्त्र शब्द का प्रयोग विशेष रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। भाषा-विज्ञान और भाषा-शास्त्र ये दोनों शब्द फिलॉलोजी और लिंग्विस्टिक्स के रूपान्तरण या भावानुवाद समझने चाहिए।

१.३. भाषा-विज्ञान की परिभाषा

भाषा के विशिष्ट ज्ञान को भाषा-विज्ञान कहते हैं। '**भाषायाः विज्ञानम्—भाषा-विज्ञानम्**'। '**विशिष्टं ज्ञानम्—विज्ञानम्**'। भाषा के वैज्ञानिक और विवेचनात्मक अध्ययन को भाषा-विज्ञान कहा जाएगा। संक्षेप में भाषा-विज्ञान का लक्षण किया जा सकता है—

'भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।'

भाषाया यत्तु विज्ञानं, सर्वाङ्गं व्याकृतात्मकम् ।
विज्ञानदृष्टिमूलं तद्, भाषाविज्ञानमुच्यते ॥ (कपिलस्य)

अनेक विद्वानों ने भाषा-विज्ञान की अनेक परिभाषाएँ दी हैं, जिसमें उन्होंने भाषा के विभिन्न पक्षों का संकलन किया है। किसी ने भाषा की उत्पत्ति आदि का संग्रह किया है; किसी ने सामान्य भाषा और विशिष्ट भाषा का संग्रह किया है; किसी ने भाषा के अध्ययन की विधियों को उसके अन्तर्गत रखा है और किसी ने भाषा की रचना, तुलना, प्रयोग आदि को स्थान दिया है। किसी ने उन तथ्यों का संग्रह किया है, जिनके द्वारा भाषा में परिवर्तन आदि होते हैं। वस्तुतः भाषा-विज्ञान की परिभाषा में अध्ययन के प्रकारों, भाषा के स्वरूप एवं परिवर्तन के कारणों आदि का पूर्णतया उल्लेख न सम्भव है, न अभीष्ट ही है। सर्वांगीण संग्रह करने पर भाषा-विज्ञान की परिभाषा एक बृहत् वाग्जाल हो जाएगा।[1]

---

१. भाषा-विज्ञान या भाषा-शास्त्र की भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने जो परिभाषाएँ दी हैं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

1. Comparative Philology or simply Philology is the Science of Language. Philology strictly means the study of a language from the literary point of view.

—Dr. P.D. Gune, *An Introduction to Comparative Philology*, p. 1.

२. भाषा-विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्य रूप से मानवीय भाषा का, किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का, और अन्ततः भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

—डॉ० मंगलदेव शास्त्री, तुलनात्मक भाषाशास्त्र, पृ० ३।

३. (क) भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को ही भाषा-विज्ञान कहते हैं। वैज्ञानिक अध्ययन से हमारा तात्पर्य सम्यक् रूप से भाषा के बाहरी और भीतरी रूप एवं विकास आदि के अध्ययन से है।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

Scanned with CamScanner

यहाँ पर यह समझ लेना आवश्यक है कि भाषा-विज्ञान को भौतिकी आदि के तुल्य विज्ञान मानना उचित है या नहीं? भौतिकी आदि के नियम गणित-विज्ञान के तुल्य तत्त्वनिष्ठ होते हैं। जैसे—दो तत्त्वों के संयोग से यह परिणाम उत्पन्न होता है। भौतिक-विज्ञान, रसायन-विज्ञान और गणित-विज्ञान इसकी पुष्टि करेगा कि २ + २ = ४ ही होता है। यह ३ या ५ नहीं हो सकता। परन्तु भाषा-विज्ञान में ऐसी इयत्ता निर्धारित नहीं की जा सकती है। दो ध्वनियों के मेल से एक भाषा में एक प्रकार का परिवर्तन लक्षित होता है, दूसरी भाषा में दूसरे प्रकार का। अत: यह कहा जा सकता है कि भाषा-विज्ञान में विज्ञान शब्द तात्त्विक आलोचना, तात्त्विक दर्शन और तात्त्विक विश्लेषण के आधार पर है। जिस प्रकार विज्ञान प्रत्येक वस्तु के अंग-प्रत्यंग एवं सूक्ष्मतम अवयव का विवेचन और विश्लेषण करता है, उसी प्रकार भाषा-विज्ञान वर्ण, पद और वाक्य के सूक्ष्मतम अवयवों का विवेचन एवं विश्लेषण करता है। विज्ञान का उद्देश्य है—कार्य-कारण-भाव की नित्यता की स्थापना। विज्ञान बताता है कि अमुक कारण की सत्ता से अमुक कार्य होता है। भाषा-विज्ञान भी इस कार्य-कारण-भाव को अपनाता है। यह बताता है कि इन विभिन्न परिस्थितियों में ये परिवर्तन होते हैं। इन कारणों के फलस्वरूप ये कार्य होंगे। भौतिक-विज्ञान आदि में अपवाद नहीं माने जाते, परन्तु भाषा-विज्ञान में अपवादों की संख्या भी पर्याप्त है। इसमें नियम और अनुभूति दोनों का समन्वय है, अत: यह शुद्ध विज्ञान न होकर मिश्रित विज्ञान है।

१.४. भाषा-विज्ञान का क्षेत्र

अन्य विज्ञानों के तुल्य भाषा-विज्ञान का क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत है। भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध किसी एक भाषा से नहीं है। इसका सम्बन्ध मानवमात्र की भाषा से है। विश्व

(ख) भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा—विशिष्ट, कई और सामान्य—का समकालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रायोगिक दृष्टि से अध्ययन और तद्विषयक सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है।

—डॉ० भोलानाथ तिवारी, भाषा-विज्ञान, पृ० ४, ७।

४. भाषा-विज्ञान का सीधा अर्थ है—भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा-विज्ञान कहलायेगा।

—डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषा-विज्ञान की भूमिका, पृ० १७६।

५. भाषा-विज्ञान को अर्थात् भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते हैं। भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है।

—डॉ० देवीशंकर द्विवेदी, भाषा और भाषिकी, पृ० १२६।

6. General Linguistics may be defined as the Science of Language. —R.H. Robins, *General Linguistics*, p. 1.

७. भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषा-विज्ञान कहा जा सकता है। Introduction to Theoretical Linguistics (सैद्धान्तिक भाषा-विज्ञान), John Lyons, पृ० १।

Scanned with CamScanner

द्वारा भी प्रस्तुत किया जाता है। जैसे—चाकू को काचू, पानी को नीपा आदि। चोर-डाकू आदि गोपन की दृष्टि से ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं, जो उनके साथी ही समझ सकते हैं। जैसे—इनको अमर कर दो (मार डालो), प्रसाद देना (जहर देना), नारायण (नाले में डाल दो)। इसी प्रकार शिक्षित युवा वर्ग भी अपने उपयोग के लिए विशेष अर्थों में नये शब्द गढ़ लेते हैं और पत्र आदि में उसका ही उपयोग करते हैं। काव्यशास्त्र में विपरीत लक्षणा, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति और अपह्नुति आदि में कूट-प्रयोग आधार रूप में है। कूट-भाषा के अनेक रूप दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं पर वर्ण-परिवर्तन, वाक्य-परिवर्तन, प्रत्येक शब्द के साथ कुछ अक्षर जोड़ते जाना, अक्षरों के लिए अंकों का प्रयोग आदि।

६. कृत्रिम भाषा (Artificial Language)—कृत्रिम भाषा परम्परागत या स्वभावसिद्ध नहीं है। यह भाषा की सुबोधता और सुगमता को लक्ष्य में रखकर बनायी जाती है। इस दृष्टि से डॉ० जमेनहाफ की बनायी एस्परेन्तो भाषा विश्व में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। विश्व भर में इसका प्रचार है। अनेक पत्र-पत्रिकाएँ इस भाषा में निकलती हैं। इसका प्रयोग करने वालों की संख्या ८० लाख से अधिक बतायी जाती है। कुछ रेडियो स्टेशनों से इस भाषा में कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये जाते हैं। इसका उद्देश्य है—भाषा-भेद से उत्पन्न होने वाली असुविधाओं को दूर करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के योग्य एक सामान्य भाषा को प्रस्तुत करना। इस प्रकार की एक दर्जन से अधिक भाषाएँ प्रस्तुत की जा चुकी हैं। जिनमें आक्सिडेण्टल, इण्टरलिंगुआ, नोवियल आदि मुख्य हैं। कृत्रिम भाषा की कुछ न्यूनताएँ भी हैं, जिनके कारण इनका प्रचलन विस्तृत जनसमाज में सम्भव नहीं है। ये न्यूनताएँ हैं—१. यह कामचलाऊ भाषा होती है। इसमें गम्भीर विषयों का विवेचन सम्भव नहीं। २. इसमें उच्च साहित्य का निर्माण सम्भव नहीं। ३. इसमें हार्दिक मनोभावों का विवेचन या विश्लेषण सम्भव नहीं। ४. यह मातृ-भाषा का स्थान या गौरव नहीं प्राप्त कर सकती है। ५. भौगोलिक भेद के आधार पर ध्वनि-भेद होने से उसमें एकरूपता सम्भव नहीं है।

२.४. बोली, विभाषा और भाषा

ऊपर भाषा के विभिन्न स्वरूपों का उल्लेख किया गया है। संसार की समस्त भाषाओं को विभिन्न कोटियों में बाँटा जाता है। इस वर्गीकरण का आधार आकृतिमूलक आदि वर्गीकरणों के अतिरिक्त बोली, विभाषा और भाषा तीन रूपों में किया जाता है। उसका ही संक्षिप्त रूप यहाँ दिया जाता है—

१. बोली (Sub-dialect)—बोली भाषा की छोटी इकाई है। इसका सम्बन्ध ग्राम या मण्डल से रहता है। इसमें व्यक्तिगत बोली की प्रधानता रहती है। इसमें घरेलू शब्द और देशज शब्दों का भी पर्याप्त प्रभाव रहता है। यह मुख्य रूप से बोल-चाल की भाषा होती है। इसमें साहित्यिक रचना आदि का अभाव रहता है। एक विभाषा में स्थानीय भेदों के आधार पर कई बोलियाँ प्रचलित रहती हैं। इसके लिए फ्रांसीसी शब्द पात्वा (Patois) प्रचलित है। यद्यपि पात्वा की सभी विशेषताएँ बोली में प्राप्य नहीं हैं,

Scanned with CamScanner

तथापि बोली के लिए इसका प्रचलन है। भाषाशास्त्रियों ने पात्वा की चार विशेषताएँ मानी हैं। (क) यह डाएलेक्ट का छोटा और स्थानीय रूप है। (ख) यह साहित्यिक भाषा नहीं होती है। (ग) यह व्याकरण की दृष्टि से असाधु भाषा होती है। (घ) इसके प्रयोक्ता अशिक्षित या निम्न स्तर के व्यक्ति होते हैं। पात्वा की अधिकांश विशेषताएँ बोली में प्राप्त होती हैं, अत: बोली को सामान्य रूप से पात्वा कहा जा सकता है। जैसे—व्रज, अवधी और भोजपुरी के स्थानीय आधार पर अनेक रूप देखे जाते हैं। भोजपुरी के गाजीपुर, बलिया, शाहाबाद आदि जिलों में थोड़े परिवर्तन से जिला स्तर पर विभिन्न रूप मिलते हैं।

२. **विभाषा** (Dialect)—विभाषा का क्षेत्र बोली की अपेक्षा विस्तृत होता है। यह एक प्रान्त या उपप्रान्त में प्रचलित होती है। इसमें साहित्यिक रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। जैसे—हिन्दी की विभाषाएँ प्रचलित हैं—खड़ी बोली, व्रज भाषा, अवधी, भोजपुरी आदि। विभिन्न बोलियाँ राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि आधार पर अपना क्षेत्र बढ़ा सकती हैं और साहित्य-रचना आदि के आधार पर वे अपना स्थान बोली से उच्च करते हुए विभाषा स्तर पर प्रचलित होने पर ही राजनीतिक, सांस्कृतिक या साहित्यिक गौरव के कारण भाषा का स्थान प्राप्त कर लेती हैं। जैसे—खड़ी बोली मेरठ, बिजनौर आदि की विभाषा होते हुए राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत होने के कारण राष्ट्रभाषा के पद पर अधिष्ठित हुई। इसी प्रकार प्रचलन के आधार पर विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं ने अपने-अपने प्रान्तों में गौरव का स्थान प्राप्त किया है।

बोली और विभाषा निम्नलिखित कारणों से महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती हैं।

(क) जब कोई बोली या विभाषा अपनी सहयोगिनी बोलियों से पृथक् होती है या अकेली शेष रह जाती है तो उसका स्थान महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

(ख) साहित्यिक श्रेष्ठता के आधार या साहित्य-रचना के आधार पर भाषा का स्थान उच्च हो जाता है। सूर-काव्य के कारण व्रज भाषा का और तुलसी के काव्य-ग्रन्थों से अवधी का महत्त्व बढ़ा। साहित्यिक अभिवृद्धि के कारण ही खड़ी बोली राष्ट्र-भाषा पद पर अधिष्ठित हुई।

(ग) सांस्कृतिक या धार्मिक श्रेष्ठता के आधार पर मथुरा, राम-भक्ति के आधार पर अयोध्या का महत्त्व बढ़ा। इस प्रकार व्रज और अवधी को धार्मिक एवं सांस्कृतिक आधार पर बल मिला। आर्यसमाज ने खड़ी बोली को अपने सांस्कृतिक प्रचार का आधार बनाया, अत: उसके प्रचार-क्षेत्र में खड़ी बोली का गौरव बढ़ा।

(घ) प्रयोक्ताओं का महत्त्वपूर्ण होना भाषा को महत्ता प्रदान करता है। अंग्रेज़ और अमरीकी अपनी व्यापारिक उन्नति आदि के द्वारा विश्व में फैले हुए हैं, अत: अंग्रेज़ी भाषा को विश्व में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार रूसी, फ्रेंच और जर्मन भाषाओं की अभिवृद्धि में इनके प्रयोक्ताओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

(ङ) राजाश्रय प्राप्त होने से कोई भी विभाषा भाषा बन जाती है। राजाश्रय के आधार पर अंग्रेज़ी राजभाषा के पद पर अधिष्ठित हुई। इसी प्रकार मुगलकाल में उर्दू और

Scanned with CamScanner

फारसी को राजभाषा घोषित किया गया था। राजनीतिक आधार पर ही खड़ी बोली को राष्ट्रभाषा का स्थान प्राप्त हो सका है, क्योंकि वह केन्द्रस्थल दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्रों की बोली थी।

३. **भाषा, परिनिष्ठित या आदर्श भाषा** (Standard Language)—इसको राष्ट्रभाषा या टकसाली भाषा भी कहते हैं। विभिन्न विभाषाओं में से कोई एक विभाषा अपने गुण-गौरव, साहित्यिक अभिवृद्धि, जन-सामान्य में अधिक प्रचलन या सर्वाश्रय आदि के आधार पर राजकार्य के लिए चुन ली जाती है और उसको राष्ट्रभाषा या राजभाषा के रूप में घोषित किया जाता है।

संक्षेप में बोली, विभाषा और भाषा का अन्तर यह कहा जा सकता है कि बोली स्थानीय भाषा है, इसका क्षेत्र जिला या कमिश्नरी तक सीमित होता है। विभाषा का क्षेत्र इससे बड़ा होता है। वह प्रान्तीय भाषा के रूप में व्यवहृत होती है। राजभाषा या राष्ट्रभाषा के लिए भाषा शब्द का प्रयोग उचित है।

बोली, विभाषा और भाषा का मौलिक अन्तर बताना संभव नहीं है। ये भेद मुख्यतया व्यवहार-क्षेत्र के विस्तार और अविस्तार पर निर्भर हैं। बोली और भाषा में निम्नलिखित अन्तर किया जा सकता है—

(क) भाषा का क्षेत्र बड़ा होता है, बोली का क्षेत्र छोटा। (ख) भाषा में प्रचुर साहित्य उपलब्ध होता है, बोली में नहीं या अत्यल्प। (ग) बोली भाषा से जन्य है, अतः भाषा और बोली का माता-पुत्री का सम्बन्ध है। (घ) भाषा शिक्षा और उच्चशिक्षा का माध्यम होती है, बोली लोक-साहित्य, लोक-गीत एवं बोल-चाल तक सीमित रहती है। (ङ) एक भाषा-जन्य बोलियों में बोधगम्यता रहती है। ये बोलियाँ कुछ अन्तर से भिन्न होने पर भी परस्पर बोधगम्य होती हैं। (च) एक भाषा की अनेक बोलियाँ हो सकती हैं, पर उनकी आधार भाषा एक ही होगी।

भाषण-विधियों के भेद से भाषा-भेद

प्रोफेसर ब्लूमफील्ड[1] ने भाषण-विधियों के भेद से भाषा के ५ भेद लिए हैं—

(१) **साहित्यिक मानक**—यह अधिकांशतः औपचारिक वार्तालापों और लेखादि में मिलता है। यह साहित्यिक स्तरीय भाषा होती है।

(२) **बोल-चाल का मानक**—यह विशेष सुविधा-प्राप्त वर्ग की बोली है।

(३) **प्रान्तीय मानक**—यह प्रान्तीय स्तर की भाषा है। एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त की भाषा में कुछ भिन्नता रहती है।

(४) **उप-मानक**—यह स्थानीय भेद से भिन्न होती है। इसमें स्थानीय अन्तर बहुत साधारण होता है। यह प्रान्तीय से कम विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने वाली स्तरीय भाषा है।

Scanned with CamScanner

और ठ को ढ होता है। (ङ) प

होता है। (छ) श ष स को स, मागधी में श।

२०. संयुक्ताक्षरों में मुख्य परिवर्तन ये होते हैं—(क) दो स्पर्श वर्णों में परसवर्ण होता है। (ख) स्पर्श के बाद अनुनासिक को पूर्वसवर्ण होगा। (ग) ज्ञ को ण्ण्। (घ) स्पर्श बाद में होने पर ल् को परसवर्ण, (ङ) क्ष को क्ख या च्छ। (च) त्य > च्च, ध्य > झ। (छ) र् को स्पर्श का सवर्ण।

२१. प्रथमा एकवचन विसर्ग (:) मागधी में 'ए' होता है, अन्यत्र 'ओ'।

२२. धातुओं के अर्थों में काफी अन्तर हुआ है।

२३. संगीतात्मक स्वर के स्थान पर बलाघातात्मक स्वर हो गए हैं।

२४. तद्भव शब्दों की संख्या अधिक है, तत्सम कम।

१२.१३. (३) अपभ्रंश (परकालीन प्राकृत, तृतीय प्राकृत)

'अपभ्रंश' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आचार्य व्याडि (पतंजलि से पूर्ववर्ती) और पतंजलि (१५० ई० पू०) ने किया है।[1] तत्पश्चात् भर्तृहरि, भामह, दण्डी आदि ने अपभ्रंश का उल्लेख किया है। अपभ्रंश के सबसे प्राचीन उदाहरण भरत मुनि (४०० ई० पू०) के नाट्यशास्त्र में मिलते हैं। कालिदास के विक्रमोर्वशीय (अंक ४) में अपभ्रंश के कुछ पद्य मिलते हैं। दण्डी (७वीं शती ई०) के समय से इसका प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। अपभ्रंश में विशाल साहित्य है। इसमें प्रमुख रचनाएँ हैं—रविषेणाचार्य-कृत पउमचरिउ, पुष्पदन्त-कृत महापुराण और जसहर-चरिउ (यशोधर-चरित), विद्यापति-कृत 'कीर्तिलता', अद्दहमाण (अब्दुर् रहमान)-कृत 'सन्देश-रासक'। अपभ्रंश को देशभाषा, देसी, अपभ्रष्ट, अवहट्ट भी कहते थे।

मार्कण्डेय ने प्राकृतसर्वस्व में तीन अपभ्रंश माने हैं—नागर, उपनागर, ब्राचड। नागर गुजरात की अपभ्रंश, ब्राचड सिन्ध की, उपनागर दोनों के मध्य की मानी है। स्पष्टतया यह पश्चिमी प्राकृतों का ही विभाजन है। सामान्यतया विद्वानों का मत है कि प्राचीन पाँच प्राकृतों से पाँच अपभ्रंशों का विकास हुआ। इनसे ही आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ विकसित हुईं। प्राचीन प्राकृत और वर्तमान भारतीय भाषाओं को मिलाने वाली कड़ी अपभ्रंश भाषाएँ हैं।

---

१. (क) शब्दप्रकृतिरपभ्रंशः इति संग्रहकारः। (वाक्यपदीय १-१४६ पर)

(ख) एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद् यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः। (महाभाष्य, आह्निक १)

(ग) शब्दः संस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षिते।
तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थ-निवेशिनम्।। (वाक्यपदीय १-१४६)

Scanned with CamScanner

अपभ्रंश की प्रमुख विशेषताएँ—

१. भाषा श्लिष्ट योगात्मक से वियोगात्मक होने लगी।

२. प्राकृत में प्रयुक्त ध्वनियाँ ही अपभ्रंश में भी थीं।

३. वैदिक संगीतात्मक स्वर के स्थान पर बलाघात स्वर हो गया।

४. सभी स्वरों का अनुनासिक रूप (ऋ को छोड़कर) अपभ्रंश में भी है।

५. अपभ्रंश में शब्दों के अन्त में उ लगाने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई। अंगु, जगु, पुत्तु।

६. दन्त्य व्यंजन मूर्धन्य होने लगे थे।

७. श और ष का प्रायः लोप हो गया।

८. ए को इ, ई भी होते हैं। लेख > लिह, लीह।

९. मध्यगत प्रथम और द्वितीय वर्ण को क्रमशः तृतीय और चतुर्थ वर्ण होते हैं। शपथ > सबध, कथितं > कधिदुं।

१०. कहीं-कहीं मध्यगत म को वँ। भ्रमर > भवँरु।

११. संयुक्ताक्षरों में र् का प्रायः लोप होता है। प्रिय > पिउ, चन्द्र > चन्द।

१२. जहाँ र नहीं है, वहाँ भी र का आगम। व्याकरण > वागरण।

१३. प्राकृत के तुल्य समीकरण, लोप, आगम आदि की प्रवृत्ति और बढ़ गई।

१४. संयुक्त व्यंजनों में एक व्यंजन का लोप और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर को दीर्घ होता है। कस्य > कासु, तस्य > तासु।

१५. शब्दरूप और धातुरूप बहुत कम हो गए।

१६. विभक्तियों के स्थान पर कारक-चिह्न परसर्ग आने लगे। जैसे—करण—सहुं, तण; संप्रदान—केहि, रेसि; अपादान—होन्त; सम्बन्ध—केर, कर; अधिकरण—मज्झ, महे।

१७. नपुंसक लिंग शब्द समाप्त हो गए।

१८. अकारान्त पुंलिंग शब्दों के तुल्य अधिकांश शब्दरूप चलने लगे।

१९. शब्दरूपों में बहुत संक्षेप हो गया। सभी कारकों के स्थान पर तीन कारक-समूह रह गए—(१) कर्ता-कर्म, संबोधन, (२) करण-अधिकरण, (३) संप्रदान, अपादान, संबन्ध। अतः शब्दरूप में ६ रूप रह गए—३ कारक X २ वचन। संस्कृत में २४ रूप थे, प्राकृत में १२।

२०. द्विवचन का पूर्णतया अभाव है।

२१. धातुरूपों में आत्मनेपद का अभाव है।

२२. धातुरूपों में प्रायः लट्, लोट्, लृट् ही शेष रहे।

२३. स्वार्थ में ये तद्धित प्रत्यय होने लगे—(१) उ, पुनः > पुणु, (२) एं या अ, अवश्यं > अवसें, अवस, (३) आर, तुहार, अम्हार।

२४. द्राविड एवं विदेशी भाषाओं के बहुत शब्द आ गए।

२५. वाक्यों में पद-क्रम निश्चित हो गया। इससे विभक्ति-लोप-जन्य अस्पष्टता कुछ कम हो गई।

Scanned with CamScanner

१२.१४. (ग) आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ (आ० भा० आ०)

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास मध्यकालीन अपभ्रंश भाषाओं से हुआ है। प्राचीन पाँच प्राकृतों से पाँच अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ है। इन पाँच अपभ्रंशों के साथ ही ब्राचड एवं खस दो अपभ्रंशों को और लिया जाता है। ब्राचड (सं० ब्राचड या ब्राचट) का उल्लेख मार्कण्डेय के प्राकृत-सर्वस्व में अपभ्रंश के २७ भेदों में मिलता है। खस (खश) उत्तरी पहाड़ी भाग की भाषा थी। उसको भी अपभ्रंश में लिया है। इस प्रकार सात अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास माना जाता है।

अपभ्रंश	विकसित आधुनिक भाषाएँ
१. शौरसेनी	(क) पश्चिमी हिन्दी
	(ख) राजस्थानी
	(ग) गुजराती
२. महाराष्ट्री	मराठी
३. मागधी	(क) बिहारी, (ख) बंगाली,
	(ग) उड़िया, (घ) असमी।
४. अर्धमागधी	पूर्वी हिन्दी
५. पैशाची	लहँदा
६. ब्राचड	(क) सिन्धी, (ख) पंजाबी।
७. खस	पहाड़ी

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की प्रमुख विशेषताएँ—

१. आ० भा० आ० संयोगात्मक से पूर्णतया वियोगात्मक हो गईं।

२. प्राकृत और अपभ्रंश में विद्यमान ध्वनियाँ प्रचलित रहीं।

३. ध्वनि-विषयक कुछ विशेषताएँ हुईं—

(क) पंजाबी आदि में उदासीन 'अ' स्वर, अवधी आदि में जपित या अघोष स्वर, गुजराती में मर्मर स्वरों का विकास।

(ख) ऋ का लिखित रूप ऋ, परन्तु उच्चरित रूप रि, दक्षिण में रु।

(ग) ष का उच्चारण श या स।

(घ) ज्ञ का उच्चारण ग्यँ, ज्यँ या ज्ञं।

(ङ) संयुक्ताक्षरों में ञ, ण् का उच्चारण अनुस्वार (ं) के तुल्य।

(च) विदेशी ऑ क़ ख़ ग़ ज़ फ़ ध्वनियाँ भाषाओं में आ गई हैं, पर इनका शुद्ध उच्चारण नहीं होता है।

४. बलाघात स्वर मुख्य हो गया है। वाक्यों में संगीतात्मक स्वर भी है।

५. अन्तिम दीर्घ स्वर पर बलाघात न होने पर दीर्घ को ह्रस्व स्वर।

६. बलाघात-रहित अन्तिम अ का लोप होता है। राम्, नाम्।

७. बलाघात के अभाव में आद्य स्वरों का लोप हो जाता है। अभ्यन्तर > भीतर, उपरि > पर।

Scanned with CamScanner

८. संयुक्त व्यंजनों में से एक का लोप हो जाता है और क्षतिपूर्त्यर्थ पूर्व ह्रस्व स्वर को दीर्घ। सप्त > सात, अद्य > आज।

९. शब्दों के रूप और कम हो गए। अपभ्रंश में ६ थे, आ० भा० आ० में केवल दो रूप रह गए—१. मूल रूप, २. विकृत रूप।

१०. आ० भा० आ० में केवल गुजराती, मराठी में तीन लिंग हैं, शेष में दो लिंग हैं—पुं०, स्त्री०। दो वचन रह गए हैं—एक०, बहु०।

११. क्रिया में कर्मवाच्य के रूप लुप्त हो गए। लकारों का प्रयोग घट गया। वर्तमान का बोध शतृ-प्रत्यय वाले रूपों के साथ 'होना' सहायक क्रिया जोड़कर होता है। भूतकाल का बोध संस्कृत क्त-प्रत्ययान्त रूपों से बने शब्दों से होता है।

१२. आ० भा० आ० में अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि के हजारों शब्द आ गए हैं। तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

१२.१५. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का संक्षिप्त परिचय

(१) पश्चिमी हिन्दी—इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसकी पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं—खड़ी बोली, व्रजभाषा, बाँगरू, कन्नौजी और बुन्देली।

(क) खड़ी बोली—यह उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों—मेरठ, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, देहरादून, बिजनौर, रामपुर आदि की भाषा है। अम्बाला और पटियाला के पूर्वी भाग भी इसी क्षेत्र में आते हैं। यह आजकल 'राजभाषा' है। इसके दो साहित्यिक रूप हैं—हिन्दी और उर्दू। हिन्दी में संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है और उर्दू में अरबी-फारसी शब्दों की। हिन्दी की लिपि देवनागरी है और उर्दू की फारसी। कुछ विद्वान् उर्दू को हिन्दी की एक शैली मात्र मानते हैं। राष्ट्रीय भावना की जागृति के कारण इसका प्रचार-प्रसार बहुत बढ़ा है। इस समय हिन्दी में उच्चकोटि का साहित्य बड़ी मात्रा में लिखा जा रहा है।

(ख) व्रजभाषा—यह मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर की भाषा है। इसके पश्चिमोत्तर भाग में राजस्थानी का और दक्षिणी भाग में बुन्देली का प्रभाव देखा जाता है। इसमें उच्चकोटि का साहित्य विद्यमान है। इसके प्रमुख साहित्यकार हैं—सूर, नन्ददास, मीरा, केशव, बिहारी, देव, भूषण, घनानन्द, रसखान, रहीम आदि। यह सरलता, सरसता एवं कोमलता के लिए विख्यात है।

(ग) बाँगरू—यह दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार, पटियाला, जींद और नाभा की बोली है। इसके अन्य नाम हैं—हरियाणी, देसाड़ी, जाटू। इस पर राजस्थानी और पंजाबी का भी प्रभाव दिखाई देता है। यह वस्तुतः खड़ी बोली की एक विभाषा है।

(घ) कन्नौजी—अवधी और व्रज के मध्य इसका क्षेत्र है। इटावा, फर्रूखाबाद, कानपुर, शाहजहाँपुर, हरदोई, पीलीभीत आदि जिलों में यह बोली जाती है। कन्नौजी क्षेत्र के कवि हैं—चिन्तामणि, मतिराम, भूषण आदि। यह व्रजभाषा की विभाषा है।

(ङ) बुन्देली—यह झाँसी, जालौन, हमीरपुर, बाँदा, ग्वालियर, ओरछा, सागर,

Scanned with CamScanner

दमोह, नरसिंहपुर आदि की बोली है। मिश्रित रूप में यह पन्ना, दतिया आदि क्षेत्रों में भी बोली जाती है। यह भी व्रजभाषा की एक विभाषा है। इसका साहित्य नगण्य है।

(२) **राजस्थानी**—इसका विकास शौरसेनी के नागर अपभ्रंश से हुआ है। इसका प्रमुख क्षेत्र राजस्थान है। पिंगल के अनुकरण पर राजस्थानी में 'डिंगल' काव्य की रचना हुई है। इसकी लिपि नागरी और महाजनी है। इसकी चार प्रमुख बोलियाँ हैं—मारवाड़ी, जयपुरी, मालवी और मेवाती। (क) **मारवाड़ी**—यह पश्चिमी राजस्थान की बोली है। इसका क्षेत्र है—जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, जैसलमेर आदि। पुरानी मारवाड़ी को डिंगल कहते हैं। (ख) **जयपुरी**—यह राजस्थान के पूर्वी भाग में बोली जाती है। इसका क्षेत्र है—जयपुर, कोटा, बूँदी, (ग) **मालवी**—यह राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी भाग की भाषा है। इसका केन्द्र इन्दौर है। (घ) **मेवाती**—यह अलवर और हरियाणा में गुड़गाँव जिले के कुछ भागों में बोली जाती है। इस पर व्रजभाषा का प्रभाव है।

(३) **गुजराती**—शौरसेनी अपभ्रंश के नागर रूप से गुजराती का विकास हुआ है। यह गुजरात प्रान्त की भाषा है। इसका राजस्थानी से बहुत साम्य है। गुजरात का प्राचीन नाम 'लाट' था। यहाँ की भाषा 'लाटी' थी। संस्कृत में 'लाटी' शैली प्रसिद्ध है। यहाँ अरब, पारसी, तुर्क आदि बड़ी संख्या में बाहर से आकर बसे हैं। अतः विदेशी तत्त्व भाषा में अधिक हैं। गुजराती की स्वतन्त्र लिपि है। यह देवनागरी से विकसित हुई है। इसमें उच्चकोटि का साहित्य मिलता है।

(४) **मराठी**—यह महाराष्ट्री अपभ्रंश से निकली है। यह महाराष्ट्र की भाषा है। इसकी चार बोलियाँ मुख्य हैं—(क) **देशी**—दक्षिणी भाग में बोली जाती है। इसको दक्षिणी भी कहते हैं। (ख) **कोंकणी**—समुद्री किनारे की बोली है। (ग) **नागपुरी**—नागपुर के समीप की बोली है। (घ) **बरारी**—बरार की बोली है। पूना की बोली टकसाली भाषा मानी जाती है। भाषा की दृष्टि से कोंकणी में कन्नड़ शब्द अधिक हैं, बरारी में भीली और तेलुगु के तथा मराठी में फारसी के शब्द अधिक हैं। मराठी का साहित्य समृद्ध एवं उच्चकोटि का है। इसमें मुकुन्दराज, ज्ञानेश्वर, रामदास, तुकाराम, नामदेव आदि की रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें सन्त साहित्य का विशाल भण्डार है। इसकी लिपि देवनागरी है।

(५) **बिहारी**—यह मागधी अपभ्रंश से निकली है। वस्तुतः बिहारी कोई भाषा नहीं है। यह बिहार प्रान्त में बोली जाने वाली भाषाओं के समूह का नाम है। इसमें प्रमुख भाषाएँ हैं—भोजपुरी, मैथिली और मगही।

(क) **भोजपुरी**—भोजपुरी का आधार 'भोजपुर' गाँव है। यह शाहाबाद जिले में था। अब शाहाबाद जिले का नाम ही भोजपुर हो गया है। इस भाषा का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें बिहार और उत्तर प्रदेश के कई जिले हैं। बिहार का पश्चिमी भाग और उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग इसका क्षेत्र है। इसमें प्रमुख जिले हैं—उ० प्र० के वाराणसी, गाजीपुर, बलिया, जौनपुर, मिर्जापुर, गोरखपुर, देवरिया, बस्ती, आजमगढ़ और बिहार के भोजपुर (शाहाबाद), राँची, सारन, चम्पारन आदि। इसका स्वतन्त्र साहित्य नहीं है। कबीर, धर्मदास, भीखा साहब आदि के पदों में भोजपुरी का प्रयोग हुआ है।

Scanned with CamScanner

(ख) मैथिली—यह मिथिला क्षेत्र की भाषा है। इसका क्षेत्र है—दरभंगा, पूर्णिया, सहरसा और मुजफ्फरपुर का पूर्वी भाग। इसका ही एक भेद (अंगिका) मुंगेर और भागलपुर में बोला जाता है। बिहारी भाषाओं में सबसे अधिक साहित्य मैथिली में है। इसके प्रसिद्ध कवि हैं—विद्यापति, उमापति, हर्षनाथ, लखिमा ठकुरानी, मनबोध झा, चंदा झा आदि। मैथिली में मधुर लोकगीत हैं।

(ग) मगही—यह पटना, गया, हजारीबाग एवं भागलपुर के पूर्वी भागों में बोली जाती है। इसमें उल्लेखनीय साहित्य नहीं है, कुछ लोकगीत हैं।

(६) बंगाली (बँगला)—यह बंगाल प्रान्त की भाषा है। मागधी अपभ्रंश के पूर्वी रूप से इसका विकास हुआ है। इसकी साहित्यिक भाषा को 'साधु भाषा' कहते हैं। इसमें संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य है। बंगाली में उच्चारण-सम्बन्धी विशेषता है। इसके लिखित और उच्चारित रूप में भेद होता है। लक्ष्मी: को लोंक्खी, परमानन्द को पोरमानन्द बोलते हैं। यह साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। इसके प्रमुख साहित्यकार हैं—चंडीदास, कृत्तिवास (रामायण), विजयगुप्त (पद्मपुराण), रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र, शरत्चन्द्र आदि। बंगला की लिपि अलग है। यह प्राचीन देवनागरी से विकसित है। बंगाली का प्रामाणिक भाषाशास्त्रीय अध्ययन डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'बंगाली का उद्भव और विकास' ग्रन्थ में किया है।

(७) उड़िया—यह उड़ीसा प्रान्त की भाषा है। इसको ओड्र (उड्र) जाति की भाषा से प्रभावित होने के कारण 'ओड्री' भी कहते हैं। उत्कल जाति की भाषा होने से 'उत्कली' भी कही जाती है। इस पर बंगाली और तेलुगु का अधिक प्रभाव है। संस्कृत भाषा के शब्द प्रचुर मात्रा में हैं। इसमें १५वीं शती के पुरी और भुवनेश्वर के शिलालेख हैं। इसकी लिपि भिन्न है। यह प्राचीन देवनागरी से विकसित हुई है।

(८) असमी—असमी, असमिया, आसामी या असामी असम प्रान्त की भाषा है। इसका बंगला से अधिक साम्य है। इसकी लिपि बंगला के सदृश है, केवल दो-तीन वर्ण भिन्न हैं। इस पर तिब्बती-बर्मी, नागा आदि भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है। इसके प्रसिद्ध कवि हैं—माधवकन्दली, शंकरदेव, माधवराम, सरस्वती आदि।

(९) पूर्वी हिन्दी—यह अर्धमागधी अपभ्रंश से विकसित हुई है। इसकी तीन बोलियाँ हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। इनकी लिपि नागरी है। **(क) अवधी**—यह लखनऊ, फैजाबाद, सीतापुर, रायबरेली, गोंडा, बहराइच आदि जिलों में बोली जाती है। कानपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर आदि के भी कुछ भाग अवधी की सीमा में हैं। इसमें जायसी का पद्मावत और तुलसी का रामचरितमानस अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इसमें पर्याप्त समृद्ध साहित्य हैं। डॉ० बाबूराम सक्सेना ने इसका प्रामाणिक भाषाशास्त्रीय अध्ययन 'अवधी का विकास' ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। **(ख) बघेली**—यह बघेलखण्ड की बोली है। इसका केन्द्र रीवाँ है। **(ग) छत्तीसगढ़ी**—इसका विस्तार रायपुर, विलासपुर के जिलों में था। इसमें केवल कुछ लोकगीत मिलते हैं।

(१०) लहँदा (लहँदी)—इसका विकास पैशाची अपभ्रंश से हुआ है। यह

Scanned with CamScanner

पंजाब के पश्चिमी भाग तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग की भाषा है। पश्चिमोत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में पश्तो बोली जाती है। उससे भेद के लिए इसे हिन्दकी भी कहते हैं। इसके अन्य नाम हैं—जटकी, मुलतानी, डिलाही, उच्ची। लहँदा का अर्थ है—पश्चिमी। इसकी लिपि लंडा है। यह उर्दू और गुरुमुखी में भी लिखी जाती है। इसकी चार मुख्य बोलियाँ हैं—(१) केन्द्रीय बोली, (२) दक्षिणी (मुलतानी), (३) उत्तरपूर्वी (पोठवारी), (४) उत्तरपश्चिमी (धनी)। इसमें सिक्खों का वार्ता-साहित्य, जनमसाखी और लोकगीत हैं। इसका क्षेत्र अब पाकिस्तान में चला गया है।

(११) **सिन्धी**—यह प्राचीन सिन्ध प्रान्त की भाषा थी। भारत-पाक विभाजन के बाद इसके बोलने वाले पंजाब, दिल्ली, मुम्बई आदि में बस गए हैं। इसकी पाँच बोलियाँ हैं—बिचौली, सिरैकी, लाड़ी, थरेली, कच्छी। इनमें बिचौली मुख्य है। यह साहित्यिक भाषा हो गई है। इसकी लिपि लंडा है। यह अरबी और गुरुमुखी लिपि में भी लिखी जाती है। इसमें साहित्य नाममात्र का है। उल्लेखनीय ग्रन्थ 'शाहजी रिसालो' है। ब्राचड अपभ्रंश के तुल्य आदिम त > ट, द > ड होता है। इसमें विदेशी शब्द अधिक हैं।

(१२) **पंजाबी**—यह पंजाब प्रान्त की भाषा है। इस पर दरद भाषा का प्रभाव है। पंजाबी की एक बोली डोगरी है, जो जम्मू राज्य में बोली जाती है। पंजाबी की लिपि गुरुमुखी है। इससे सिक्खों का साहित्य विशेष रूप से लिखा जा रहा है। इसमें संस्कृत और प्राकृत के शब्द अधिक हैं।

(१३) **पहाड़ी**—खस अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है। कुछ विद्वान् शौरसेनी से ही इसका विकास मानते हैं। यह हिमालय के निचले भाग में बोली जाती है। इसकी लिपि नागरी है। इसके तीन भाषा-वर्ग हैं—(१) पश्चिमी, (२) मध्य, (३) पूर्वी। पश्चिमी पहाड़ी की लगभग ३० बोलियाँ हैं। इनमें उत्तर प्रदेश के जौनसार-बाबर की जौनसारी तथा पश्चिमी पहाड़ी भाग शिमला आदि की शिरमौरी, चंबाली, कुलूई, क्यंथली बोलियाँ मुख्य हैं। मध्य पहाड़ी के दो भाग हैं—(१) गढ़वाल की गढ़वाली, (२) कुमायूँ की कुमायूँनी। कुमायूँनी में थोड़ा साहित्य है। इनका लोक-साहित्य सम्पन्न है। पूर्वी पहाड़ी में नेपाली है। इसको खसकुरा, गोरखाली, पर्वतिया भी कहते हैं। यह नेपाल की राजभाषा है। इसका साहित्य नवीन है। डॉ० टर्नर ने नेपाली पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'नेपाली शब्दकोश' लिखा है।

*

Scanned with CamScanner

चिनगारी पर बोलते हैं, **जन्ता, बद्ला, अन्जान, चिन्गारी**। **उलटा** और **उल्टा, बरतन** और **बर्तन** तो दो तरह से लिखे भी जाते हैं। अरबी-फारसी स्रोत से आए शब्द भी इसी प्रकार दो रूपों में लिखे जाते हैं, जैसे—**बिलकुल-बिल्कुल, अकसर-अक्सर, गरदन-गर्दन, गरमी-गर्मी, सरदी-सर्दी, कुरसी-कुर्सी, अकल-अक्ल, इनसान-इन्सान** आदि। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा इनके असंयुक्त रूपों के प्रयोग को ही उचित ठहराते हैं,[18] यद्यपि इसे सार्वत्रिक बनाने के पक्ष में वे भी नहीं हैं, क्योंकि **अन्दर, अन्दाज, मस्त, इन्तजाम, बन्द,** आदि शब्दों को **अनदर, अनदाज, मसत, इनतजाम, बनद,** आदि रूपों मे नहीं लिखा जा सकता। *विशेषज्ञ समिति* ने शिष्ट समुदाय में जिन दोनो रूपों की एक सी मान्यता है उनकी एकरूपता के लिए आग्रह नहीं किया है।[19]

अँगरेजी शब्दों के साथ अर्धविवृत 'ओ' ध्वनि भी हिन्दी में आ गयी है, जिसके लिए देवनागरी में ॉ ध्वनिचिह्न का प्रयोग किया जाता है। आचार्य शर्मा ने **हॉल, कॉल, बॉल, कॉलेज** जैसे शब्दों में इस ध्वनिचिह्न के प्रयोग की सिफारिश की है और *विशेषज्ञ समिति* ने भी इसे मान्यता प्रदान की है। पर अरबी-फारसी की ध्वनियों की तरह इनके अनुकूलन की भी छूट रहनी चाहिए, अन्यथा अनेक हिन्दीभाषी इन शब्दों का उच्चारण कर ही नहीं पाएँगे। कोई कारण नहीं कि **कालेज, नालेज, हाल, बाल, लान** आदि को अशुद्ध करार दिया जाए, जबकि उत्तर प्रदेश के अधिकांश हिन्दीभाषी इन शब्दों का उच्चारण इसी रूप में करते हैं। और तो और, भारत में अँगरेजी भी अनुकूलित ध्वनियों के साथ ही बोली जाती है, लिखी भले ही वह मानक रूप में जाती हो।

जहाँ तक अँगरेजी और अन्य विदेशी भाषाओं से नये शब्द लेने और उन्हें देवनागरी में लिखने का सम्बन्ध है, अगस्त-सितम्बर, 1962 में *वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग* द्वारा वैज्ञानिक शब्दावली पर आयोजित संगोष्ठी में अन्तरराष्ट्रीय शब्दावली के देवनागरी लिप्यन्तरण सम्बन्धी अनुशंसा में कहा गया है कि अँगरेजी शब्दों का देवनागरी लिप्यन्तरण इतना क्लिष्ट नहीं होना चाहिए कि कुछ देवनागरी वर्णों में अनेक नये संकेतचिह्न लगाने पड़ें। अँगरेजी शब्दों का देवनागरी लिप्यन्तरण मानक अँगरेजी उच्चारण के अधिक से अधिक निकट होना चाहिए। उसमें भारतीय शिक्षित समाज में प्रचलित उच्चारण सम्बन्धी थोड़े-बहुत परिवर्तन किये जा सकते हैं। अन्य भाषाओं के सम्बन्ध में भी यही नियम लागू होना चाहिए।[20]

अँगरेजी के कुछ तद्भव शब्दों को भी दो रूपों में लिखने का प्रचलन हो गया है; जैसे—**अँगरेजी-अंग्रेजी, अँगरेज-अंग्रेज, फैक्टरी-फैक्ट्री, बैटरी-बैट्री, मिलिटरी-मिलिट्री** आदि। इनमें से एक को शुद्ध और दूसरे को अशुद्ध नहीं घोषित किया जा सकता, पर प्रथम रूप ही अधिक स्वाभाविक और हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप है।

देवनागरी लिपि :

संविधान द्वारा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को राजभाषा स्वीकार करने के बाद देवनागरी के मानकीकरण का प्रश्न भी एक अहम प्रश्न रहा है। रोमन लिपि की तुलना में देवनागरी को हीन और अयोग्य ठहराने के लिए देवनागरी के विपक्ष में अनेक तर्क दिये जाते रहे हैं। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने इन तर्कों को एक जगह बहुत सुसंगत रूप में प्रस्तुत किया है, अतः हम उन्हीं के शब्दों में इसे प्रस्तुत कर रहे हैं :

Scanned with CamScanner

"प्राविधिक दृष्टि से देवनागरी पिछड़ी हुई है और उसके वर्तमान रूप के रहते उसमें सुधार का अवकाश भी नहीं है। वर्णों के आकार जटिल हैं और संयुक्ताक्षरों के चलते वे और भी जटिल हो जाते हैं। संयुक्ताक्षरों को लिखने की कोई एक पद्धति नहीं है। कभी वे बगल से लिखे जाते हैं, जैसे—**क्ख, ग्घ** में, तो कभी नीचे-ऊपर जैसे—द्द, ड्ड, ट्ट में। कुछ संयुक्ताक्षर बगल में भी जोड़े जाते हैं और नीचे-ऊपर भी, जैसे—क्क, ङ्क। तात्पर्य कि संयुक्ताक्षरों का कोई निश्चित नियम नहीं है जिससे लिखने में तो उलझन पैदा होती ही है, मुद्रण और टंकन में उससे भी अधिक उलझन होती है। जो काम अंग्रेजी में 52 टाइपों से चल जाता है उसके लिए हिन्दी में लगभग 450 टाइप काम में लाने पड़ते हैं। देवनागरी आक्षरिक (सिलेबिक) लिपि है रोमन की तरह वार्णिक नहीं। इसलिए वर्णों को अलग-अलग लिखने के बदले एक ही में मात्राएँ—कभी नीचे, कभी ऊपर, कभी बगल में—लिखनी पड़ती हैं। इसके चलते वर्णों के स्वाभाविक रूप में भी परिवर्तन करना पड़ता है। ये मोड़ और घुमाव इतने अधिक हो जाते हैं कि लिपि को जटिल बना देते हैं। देवनागरी में स्वरों के लिए दो चिह्न हैं—एक तो स्वरों को स्वतन्त्र रूप में लिखने के लिए, जैसे आ, इ, ई, उ, ऊ आदि और दूसरे वर्णों में जोड़ने के लिए जैसे— ा, ि, ी, ु, ू आदि। . . . . देवनागरी की ये उलझनें और जटिलताएँ इसके आधुनिक युग के अनुकूल होने में बाधक हैं।"[21]

देवनागरी की इन तथाकथित त्रुटियों में कुछ तो स्वीकार्य हैं और कुछ अस्वीकार्य। इन सारी 'त्रुटियों' को स्वीकार्य मान लेने के कारण ही स्वाधीनता संग्राम के दौरान और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देवनागरी लिपि के सुधार के अनेक हास्यास्पद प्रयत्न किये गये। उदाहरणार्थ **इ, ई, उ** और **ऊ** के लिए **अि, अी, अु** और **अू** के प्रयोग का सुझाव दिया गया और बहुत सी किताबें भी इस 'सुधरी हुई' देवनागरी में मुद्रित हुईं। बाद में एक सुधार यह प्रस्तावित हुआ कि **इ** की मात्रा ि का रूप बदल कर ो कर दिया जाए और **ई** की मात्रा ी की तरह व्यंजन के बाद लगाया जाय। यह भी सुझाव दिया गया कि **उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ** और अनुस्वार-चन्द्रबिन्दु की मात्राएँ (ु, ू, े, ै, ो, ौ, ं, ँ) वर्णों के बाद लगायी जाएँ। जैसे क ु, क ू, क े, क ै, क ो, क ौ, क ं, क ँ आदि। ऋ भी मात्रा (ृ) को भी वर्ण के बाद (क ृ) लगाने का सुझाव रखा गया। ये सारे सुझाव प्रचलित रोमन टंकन और मुद्रण यन्त्रों के अनुसार दिये गये थे और इस बात की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया गया था कि देवनागरी लिपि की प्रकृति के अनुरूप टंकन और मुद्रण यन्त्रों में भी सुधार किया जा सकता है। यह प्रसन्नता की बात है कि आज टंकन और मुद्रण यन्त्रों का निर्माण देवनागरी की प्रकृति के अनुसार होने लगा है और देवनागरी लिपि के सुधार के अनेक प्रस्ताव इतिहास की वस्तु बन गये हैं। इधर देवनागरी के रूप में भी कुछ सुधार किये गये हैं और वर्णों के एकाधिक प्रचलित रूपों में से किसी एक, सरल और सुसंगत रूप को, मानक रूप स्वीकार कर लिया गया है। अब देवनागरी लिपि में टंकन और मुद्रण के आधुनिकतम यन्त्र उपलब्ध होने लगे हैं। इस सम्बन्ध में भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय का प्रयत्न सराहनीय है जिसने देश के शीर्षस्थ विद्वानों तथा तकनीकी ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों से वर्णों के विचार विमर्श के बाद हिन्दी वर्णमाला तथा अंकों का मानक स्वरूप निर्धारित किया है।[22]

Scanned with CamScanner

इस मानक हिन्दी वर्णमाला में देवनागरी के सभी वर्णों को उनके मूल रूप में ही स्वीकार किया गया है, पर जिन वर्णों के दो रूप प्रचलित हैं, उनमें से उन रूपों को मानक माना गया है जिसके अन्त में खड़ी पाई होती है। उदाहरण के लिए अ, झ, ण, ल, श्र के दो दो रूप प्रचलित हैं। अ-अ, झ-झ, ण-ण, ल-ल, श्र-श्र, इनमें से प्रथम रूपों को मानक रूप स्वीकार किया गया है। कुछ वर्णों के पुराने रूप, जैसे रव, ह्म, क्ष आदि के मानक रूप ख, ह्म, क्ष आदि बना दिये गये हैं ताकि वे अपने समरूप अन्य अक्षरों से भिन्न प्रतीत हों। सम्प्रति देवनागरी वर्णमाला में 'ड़' और 'ढ़' वर्ण भी जोड़े गये हैं ताकि हिन्दी में बहुप्रयुक्त इन ध्वनियों का भी प्रतिनिधित्व हो सके। मराठी का वर्ण ळ भी हिन्दी वर्णमाला में शामिल कर लिया गया है, क्योंकि इस वर्ण से व्यक्त होने वाली ध्वनि मराठी में बहुप्रयुक्त है और देवनागरी मराठी की भी लिपि है। संस्कृत के लिए प्रयुक्त देवनागरी वर्णमाला में ऋ, ॡ तथा ऌ भी सम्मिलित हैं पर हिन्दी या मराठी में इन वर्णों का प्रयोग न होने के कारण इन्हें हिन्दी की मानक वर्णमाला में स्थान नहीं दिया गया है।

देवनागरी वर्णमाला की समस्या व्यंजन वर्णों में स्वर की मात्राएँ लगाने तथा दो या दो से अधिक व्यंजन वर्णों को संयुक्त करने में होती है। व्यंजन वर्णों में मात्राएँ लगाने की समस्या का समाधान आधुनिक मुद्रण यन्त्रों में सुधार होने से स्वतः हो गया है। यदि कहीं कोई समस्या रह गयी है तो उसका समाधान यन्त्रों में पुनः सुधार से ही सम्भव है। संयुक्त वर्णों के लिए विशेषज्ञ समिति ने यह सुझाव दिया है, जिसका पालन भी हो रहा है, कि खड़ी पाई वाले व्यंजनों का संयुक्त रूप खड़ी पाई को हटाकर ही बनाया जाना चाहिए; जैसे—**अध्यादेश, लक्ष्य, विघ्न, कच्चा, लज्जा, सभाध्यक्ष, सत्ता, कक्ष, ध्वनि, न्यास, प्यास, प्राप्त, डिब्बा, साध्य, रम्य, प्रायः, उल्लेख, व्यास, श्लोक, राष्ट्रीय, स्वीकृत, यक्ष्मा, संयंत्र** आदि। **विघ्न, कच्चा, लज्जा, सत्ता, प्राप्त, उल्लेख, राष्ट्रीय,** आदि के **विघ्न, कच्चा, लज्जा, सत्ता, प्रास, उल्लेख, राष्ट्रीय,** आदि रूप मानक नहीं माने गये हैं। अन्य व्यंजनों के सन्दर्भ में 'क' और **फ** के मानक संयुक्ताक्षर **संयुक्त, प्त, द्द** आदि माने गये हैं संयुक्त, प्रत्त, दृढ़ आदि नहीं। ङ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, द और ह के हल् चिह्न लगे संयुक्ताक्षर ही मानक माने गये हैं। जैसे—**वाङ्मय, उच्चारण, लट्टू, लड्डू, चिट्ठी, चिह्न** आदि। संयुक्त **र** के प्रचलित तीनों रूपों को मानक मान लिया गया है, जैसे—**प्रचार, धर्म, राष्ट्र**। **र्+र** से संयुक्त रूप के लिए **र्र** और **र्र** दोनों को मानक रूप स्वीकार किया गया है जबकि **क्र** और **क्र** में **क्र** को मानक माना गया है। ये सारे सुझाव हिन्दी जगत में प्रायः स्वीकार कर लिये गये हैं पर विशेषज्ञ समिति का एक सुझाव अब तक स्वीकार्य नहीं हुआ है। समिति का सुझाव है कि हल् चिह्न युक्त वर्ण से बनने वाले संयुक्ताक्षर के द्वितीय व्यंजन के साथ 'इ' की मात्रा (ि) का प्रयोग सम्बन्धित व्यंजन के तत्काल पूर्व किया जाए न कि पूरे युग्म से पूर्व, यथा—**कुट्टिम, दीवित्व, बुद्धिमान, चिह्नित** आदि। पर हिन्दी लेखकों द्वारा इन रूपों के प्रयोग की सम्भावना बहुत कम है। सच पूछें तो यह सुझाव संगत भी नहीं है। संयुक्त वर्ण एक स्पोट में उच्चरित होते हैं। अतः उनके बीच में किसी स्वर मात्रा का आना संगत नहीं है। विशेषज्ञ समिति की एक सिफारिश यह है कि संस्कृत में संयुक्ताक्षर पुरानी शैली में भी लिखे जा सकेंगे। पर हिन्दी में संस्कृत के तत्सम शब्द क्या संस्कृत के नहीं रह जाते? अतः प्रकारान्तर से हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत के तत्सम शब्दों के लेखन की पुरानी

Scanned with CamScanner

शैली को विशेषज्ञ समिति ने स्वीकार ही कर लिया है। अतः यदि हिन्दी के लेखक इस लेखन शैली का अनुगमन करते हैं तो इसके लिए उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

समिति ने देवनागरी लिपि में शिरोरेखा के प्रयोग को उसके मानक रूप के अन्तर्गत रखा है। समिति ने पूर्ण विराम (फुल स्टॉप) को छोड़कर अँगरेजी के शेष सभी विरामचिह्नों को देवनागरी में शामिल कर लेने की अनुशंसा की है। पूर्ण विराम के लिए समिति ने खड़ी पाई (।) को मानक प्रयोग माना है।[23] हिन्दी के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशक पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) के स्थान पर अँगरेजी के 'फुल स्टॉप' (.) का प्रयोग कर रहे हैं जो उचित नहीं है।"[24]

हमने यहाँ तनिक विस्तार में हिन्दी व्याकरण, वर्तनी और लिपि के मानकीकरण के प्रश्न पर विचार किया है। पर यह ध्यातव्य है कि कोई भी भाषा मानकीकरण का बन्धन पूर्णतः स्वीकार नहीं करती। भाषा की प्रवृत्ति स्वभावतः विकासोन्मुख है। उसे व्याकरण या स्थिर मानक रूपों में निगड़ित करना उसकी मृत्यु को बुलावा देना है। संस्कृत जैसी वैज्ञानिक और व्याकरण के बन्धनों में जकड़ी भाषा भी अनेक शब्दों का एक मानक रूप स्थिर करने में असमर्थ रही है। उदारहण के लिए संस्कृत के कुछ शब्द देखे जा सकते हैं जिनके दो दो रूप व्यवहार में प्रचलित हैं : आषाढ़-असाढ़, कषा-कशा, शबल-सबल, कुशल-कुसल, वशिष्ठ-वसिष्ठ, मुशल-मुसल, सूकर-शूकर, सृगाल-शृगाल, कोष-कोश, अश्रु-अस्रु, शूर-सूर, किशलय-किसलय, अली-अलि, परावत-पारवत, कवाट-कपाट, प्रतिकार-प्रतीकार आदि।[25] अँगरेजी जैसे विकसित भाषा में भी अनेक शब्दों की वर्तनी में अनेकरूपता देखी जाती है। ऑक्सफोर्ड और केम्ब्रिज की दूरी 80 किलोमिटर भी नहीं है पर ऑक्सफोर्ड में abridgement, acknowledgement, और judgement प्रयोग प्रचलित हैं तो केम्ब्रिज में abridgment, acknowledgment और judgment. इसी प्रकार biased-biassed, focusing, focussing जैसे प्रयोग भी प्रचलित हैं।[26] इंगलैण्ड और अमरीका की अँगरेजी में अनेक शब्दों की वर्तनी भिन्न हो गयी है। इंगलैण्ड में programme, dialogue, centre, labour, traveller आदि प्रयोग चलते हैं तो अमरीका में program, dialog, center, labor, traveler आदि। तात्पर्य यह है कि केवल हिन्दी में ही कुछ शब्दों की वर्तनी दो रूपों में नहीं है, बल्कि प्रायः सभी भाषाओं में यह बात कमोवेश मात्रा में पायी जाती है। हिन्दी एक विकासमान भाषा है। भारत एक बहुभाषाभाषी देश है, जहाँ की राजभाषा हिन्दी है। स्वयं हिन्दी क्षेत्र में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं जिनके बोलने वाले हिन्दी भाषा और साहित्य के निर्माण में लगे हुए हैं। जहाँ इतने प्रकार के भाषाभाषियों द्वारा हिन्दी निर्मित और समृद्ध हो रही हो, वहाँ शब्दों की वर्तनी की भिन्नता अस्वाभाविक नहीं है। पर शब्द-रूप और वर्तनी विषयक अराजकता भी किसी समृद्ध भाषा के लिए वांछनीय नहीं मानी जा सकती। अतः भाषावैज्ञानिक और व्यावहारिक तर्कों के आधार पर शब्दों के मानक रूप और वर्तनी निर्धारित होनी ही चाहिए। पर इसके बावजूद यदि कुछ शब्दों की वर्तनी भिन्न भिन्न बनी रहती है तो यह कोई बहुत चिन्ता की बात नहीं है। इसलिए हमने अपने विवेचन में अनेकत्र शब्दों की दो दो वर्तनियों को मानक रूप मानने का सुझाव प्रस्तुत किया है।[27]

Scanned with CamScanner